तरुण सीरीज़

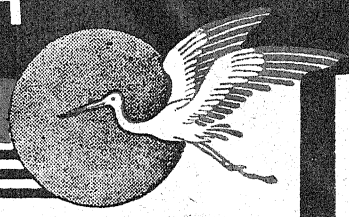

साहसिक अन्वेषण

और प्राचीन सभ्यता

लेखक

श्रीनारायण मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०

इस पुस्तक में

- गोबी की मरुभूमि
- दक्षिण ध्रुव की खोज
- एक सुनसान द्वीप
- पैसिफ़िक महासागर के अग्निद्वीप
- हवाई द्वीप-समूह की सभ्यता, और
- एक अद्भुत खोह

के रोमांचकारी वर्णन पढ़िए

६१०.६
श्रीना/सा

तरुण कार्यालय
इलाहाबाद

त रु ण सी री ज़ नं० १

साहसिक अन्वेषण

और प्राचीन सभ्यता

लेखक

श्रीनारायण मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०

[अध्यापक, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी]

त रु ण का र्या ल य, इ ला हा बा द

प्रकाशक—कृष्णनन्दन प्रसाद
तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

प्रथमावृत्ति—अक्तूबर, १९४२

मूल्य बारह आने

मुद्रक—मगनकृष्ण दीक्षित
दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

HINDUSTANI ACADEMY
Hindi Section
Library No. 5380
Date of Receipt 1.9.9.47
915/35 Sectn 915

'तरुण' को निकलते हुए अब तीन वर्ष होने आये। इसके मुख्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य भारत के तरुणों को यह याद दिलाना है कि संसार की सारी सभ्यता का विकास और पुष्टिकरण तरुणों के उद्योग और साहस का फल है। चाहे हम व्यक्ति-जीवन को देखें या किसी देश और जाति के जीवन पर दृष्टि डालें, हमें मालूम होगा कि जितने भी उन्नति के कार्य हुए हैं वह सब व्यक्ति या देश की तरुणावस्था में ही किये गये हैं। लड़के अपने पूर्वजों की कमाई पर फलते-फूलते हैं; वृद्ध-जन व्यक्ति और जाति की कमाई को संचय कर के सुरक्षित रखते हैं; परन्तु कमाई करना और प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मानव-सभ्यता को आगे बढ़ाना तरुणों का स्वाभाविक गुण है। यदि किसी देश या जाति के तरुणों में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति किन्हीं कारणों से शिथिल हो जाती है तो हम उस देश या जाति को वृद्ध कहते हैं। ऐसे देश और जातियाँ अपने अतीत के गौरव के गुण गाने में लग जाती हैं और उन्हें भविष्य शून्य विदित होने लगता है। इसके विरुद्ध संसार में कुछ देश और जातियाँ ऐसी भी होती हैं जो दिन-रात भविष्य की ओर बढ़ती हुई गौरव प्राप्त करने में लगी रहती हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार चीन और भारतवर्ष को वृद्ध और अमेरिका और जापान को तरुण देश कहा जाता है। देश और जाति की जर्जरता को दूर कर उनमें फिर से तारुण्य का संचार करने का एकमात्र उपाय है, तरुणों को उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों की याद दिला कर उन्हें उत्तेजित करना।

'तरुण' ने जहाँ दूसरे उद्देश्यों को ध्यान में रख के देश की सेवा करने की चेष्टा की वहाँ इस मुख्य उद्देश्य पर भी समय समय पर लेख प्रकाशित किये। जिन लेखों का संग्रह इस पुस्तक में किया जाता है वे इसी उद्देश्य-विशेष की पूर्ति के लिए लिखे गये हैं और उनमें साहस, धैर्य, सहनशीलता, ज्ञानोपार्जन की लालसा और तारुण्य के दूसरे

आदर्शों को तरुणों के सामने रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में मानव-सभ्यता की एकता और विश्वव्यापी भ्रातृत्व के भावों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'तरुण' सीरीज़ की यह पहली पुस्तक विद्वत्तापूर्ण, अन्वेषणात्मक और अत्यन्त रोचक है और अपने विषय और महत्व की हिन्दी में पहली पुस्तक है। आशा है यह हिन्दी-जगत की एक विशेष आवश्यकता को पूरा करेगी।

—प्रकाशक

HINDUSTANI ACADEMY
Hindi Section
Library No 5380
Date of Receipt 19-9-47
Section 915
35

गोबी की मरुभूमि

एशिया और योरोप के लगभग सभी देशों के प्राचीन इतिहास में ऐसी जातियों का उल्लेख पाया जाता है जिन्होंने किसी न किसी समय में उस देश पर आक्रमण किया था और आदिम निवासियों पर विजय प्राप्त करके वहीं बस गई थीं। प्रत्येक देश की प्राचीन सभ्यता इन्हीं विजयी जातियों के द्वारा स्थापित हुई कही जाती है। यह जातियाँ प्रायः मध्य एशिया के किसी अज्ञात भाग से निकल कर देश-देशान्तर में फैली थीं। दक्षिण एशिया और योरोप के जो जो भाग उनके मार्ग में पड़ते गये थे उनको विजय करके यह जातियाँ आगे बढ़ती गई थीं। भारतवर्ष के इतिहास से भी इस बात का पता चलता है कि जो आर्य जाति ईस्वी संवत् से सहस्रों वर्ष पहले ख़ैबर के दर्रे को पार करके यहाँ आई थी वह भी अपने साथ एक ऊँचे दर्जे की सभ्यता लाई थी। प्राचीन काल की पुस्तकों और जीवन-प्रणाली और रीति-रिवाजों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि मध्य एशिया का वह भाग जहाँ से इन जातियों ने प्रस्थान किया था ज़रूर उन्नति और सभ्यता की जन्मभूमि रहा होगा। इसी विचार और अनुमान के कारण बड़े बड़े साहसी अन्वेषक मध्य-एशिया की उस भूमि की खोज में बहुत दिनों से चक्कर लगाते रहे हैं

जिस भूमि से उठने वाली जाति ने इस प्रकार सारे संसार की सभ्यता का रूप परिवर्तित कर दिया था।

मध्य-एशिया एक ओर भारतवर्ष की उत्तरी सीमा से लेकर रूस के साइबेरिया प्रान्त तक और दूसरी ओर फ़ारस की सीमा से लेकर चीन तक फैला हुआ है। इस विस्तृत भूमि-खंड का क्षेत्रफल लगभग योरप के क्षेत्रफल के बराबर है किन्तु उसकी जनसंख्या दो करोड़ से अधिक नहीं है। इस दो करोड़ जन-संख्या का बहुत बड़ा भाग चरवाहों या बंजारों के समान एक स्थान से दूसरे स्थान तक सदा भ्रमण किया करता है। बहुत थोड़े से लोग खेती-बारी या वाणिज्य का काम करते हैं। इस भूमि-खंड के लोग आज भी ऊँटों और घोड़ों पर यात्रा करते हैं और यहाँ के व्यापारी इस समय भी ऊँटों से माल ढोने का काम लेते हैं। इस भू-खंड में भ्रमण करने वालों को बड़े बड़े बीहड़ और लम्बे रास्ते से होकर जाना पड़ता है और सारी यात्रा में बडी बडी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

इसी विस्तृत भूमि-खंड का एक भाग मंगोलिया कहलाता है। इस भाग के चारों ओर ऐसी पहाड़ियों की क़तारें चली गयी हैं जिनकी चोटियाँ बर्फ़ से ढँकी रहती हैं और जिनकी तराई में बड़े बड़े जंगल उगे हुए हैं। मंगोलिया का मध्य भाग जो लगभग दो हज़ार मील लम्बा है गोबी की मरुभूमि के नाम से विख्यात है। इस विस्तृत मरुभूमि में न कहीं पानी मिलता है और न वृक्षों की छाया। ध्रुव-खंडों से भी कहीं ज़्यादा गहरी

ख़ामोशी छाई रहती है और साल में नौ महीने सूर्य की किरणें यहाँ बिल्कुल सीधी पड़ती हैं जिसके कारण मरुभूमि भट्टी की तरह दहकती रहती है। दिन-रात आकाश पर गर्द और धुन्ध छाई रहती है और सूर्य का प्रकाश भी कुछ ऐसा धुँधला सा रहता है कि जिसके कारण सारी मरुभूमि का दृश्य भयानक देख पड़ता है। बरसने वाले मेघ इस मरुभूमि पर कभी भूले से भी नहीं आते। उसके उत्तर ओर जो पहाड़ियों का क्रम चला गया है उसमें कुछ ऐसे दर्रे और घाटियाँ हैं जिनमें से अक्सर आँधी की तरह की तेज़ हवाएँ बहती रहती हैं। कई विद्वानों का अनुमान है कि यह मरुभूमि किसी काल में एक बहुत बड़ा समुद्र था जिसे चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे पर्वत घेरे हुए थे। पृथ्वी की आन्तरिक उष्णता और ऋतु-क्रम में परिवर्तन हो जाने के कारण कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि इस भूमितल के अधिकांश भाग में कणों को एकत्रित रखने की शक्ति कम हो गई और मिट्टी के कण बिखरने लगे। चारों ओर के पहाड़ चूर हो हो कर रेत बनते गये और आँधियाँ उस रेत को उड़ा उड़ा कर इस भू-खंड पर फैलाती रहीं जिसका फल यह हुआ कि बड़े बड़े बर्फ़ से ढँके हुए पहाड़ रेत बन कर सम भूमि में परिवर्तित हो गये और उनके बीच का समुद्र भी रेत से पट गया। बड़े बड़े शहर, ऊँचे ऊँचे महल, गगन-चुम्बी मन्दिर और इस प्रदेश के गौरव के सारे चिन्ह बालू में दब कर लोप हो गये। मनुष्य की शक्ति प्रकृति के इस भयंकर प्रकोप का सामना

न कर सकी और अंत में धीरे धीरे इस भू-खंड की सारी सभ्यता नष्ट हो गई।

अनुमान किया जाता है कि गोबी की मरुभूमि का निर्माण लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व हुआ है और प्रकृति ने यह सब कौतुक तेज़ आँधियों के द्वारा किया है। कौन कह सकता है कि प्रकृति के इस क्रूर नियम के सामने अब किस देश को सर झुकाना पड़ेगा। अफ़्रीका महाद्वीप के उत्तरी भाग में प्रचंड आँधियों के ऐसे ही कौतुक ने सहारा नामक मरुस्थल उत्पन्न करके एक बड़ी सभ्यता को नष्ट कर दिया। आजकल जो हवा सहारा की मरुभूमि के ऊपर से स्वेज़ नहर की ओर बहती है उसमें भी इतनी अधिक रेत होती है कि यदि नहर बराबर खोदी न जाया करे तो थोड़े ही समय में वह रेत से पट जाय और उसमें होकर जहाज़ों का निकलना असंभव हो जाय। फ़ारस देश के एक बड़े भाग का मरुभूमि में परिवर्तित हो जाना अभी थोड़े ही दिन की बात है। अलिक्ज़ैन्डर के आक्रमण के समय में फ़ारस के वह भाग जो हरे भरे थे और जिनके बारे में अलिक्ज़ैन्डर ने लिखा है कि वहाँ कोई भूखों नहीं मर सकता वही भाग आज बालू के समुद्र के नीचे दबे पड़े हैं। यही हाल एशिया माइनर के कई भागों का है। इंजील में जिन प्रान्तों के बारे में लिखा है कि वहाँ दूध और शहद की नदियाँ बहती हैं उनके ऊपर मरुस्थल सहारा की बालू लहरा रही है। हमारे भारतवर्ष के भी कुछ भाग ऐसे हैं जिन पर प्रचंड वायु दिन-

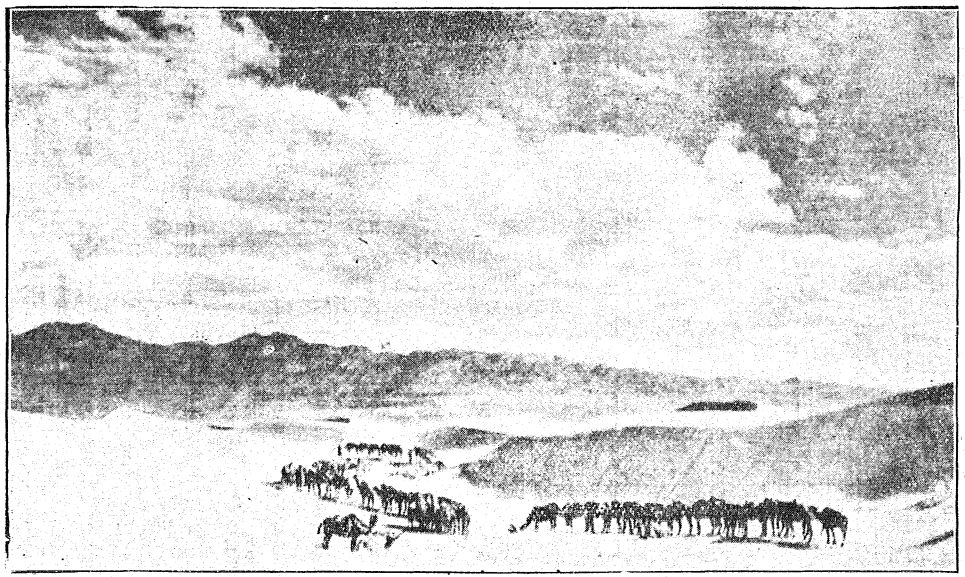

गोबी की मरुभूमि—जहाँ बड़े बड़े शहर, ऊँचे ऊँचे महल, गगन-चुम्बी मन्दिर और गौरव के सारे चिन्ह बालू में दब कर लोप हो गये

रात बहती रहती है और भय है कि जैसे-जैसे पृथ्वी के उन भागों की आन्तरिक उष्णता बढ़ती जायगी, जंगल और वनस्पति का उगना कम होता जायगा और वह भाग ऊसर और रेतीले होते जायेंगे।

कैसे आश्चर्य की बात है कि जो वायु मनुष्य जीवन के लिए ऐसी आवश्यक है या जो वायु समीर के नाम से उद्यानों में अधखिली कलियों से अठखेलियाँ करती हुई चलती है और सारे भूमितल को हरा-भरा और रमणीय बनाकर वसन्त से आभूषित कर देती है वही वायु किसी किसी स्थान पर ऐसी प्रचंड और भयंकर हो जाती है कि बड़े बड़े पर्वतों का मुँह मोड़ देती है और मनुष्य की कृतियों को क्षण भर में तहस-नहस कर देती है। बड़ी बड़ी सेनाएँ और भयंकर तोपें भी मध्य-एशिया की जिस सभ्यता के चिन्ह को नष्ट नहीं कर सकती थीं उसे केवल वायु के प्रकोप ने मिटा दिया। आज इतिहास के आदि पर्व पर दृष्टि डालने वाले को यह तो अवश्य मालूम होता है कि मध्य एशिया को प्रकृति ने मानव सभ्यता की जन्मभूमि बनाया था और उस पृथ्वी-खंड से बाहर जाने वाली जातियों को वह शक्ति प्रदान की थी जिसके कारण उन्होंने एशिया और योरप में अपनी विजय-पताका फहरायी और अपनी सभ्यता के बीज बोये। परन्तु स्वयं मध्य-एशिया की सभ्यता क्या थी इसका ज्ञान कुछ काल पहले तक किसी इतिहास जानने वाले को न था।

यह अभी कुछ ही वर्ष की बात है कि स्वीडन देश के एक वैज्ञानिक डाक्टर स्विन हेडेन ने इस निर्जन और सुनसान मरुस्थल के रहस्य का पता लगा कर संसार को बताया। उन्हें यकायक यह धुन समाई कि मध्य-एशिया की मरुभूमि को छान कर आदिम सभ्यता को खोज निकालें। उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा समय देकर और बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करके कई प्रयत्नों के बाद इस मरुभूमि को एक किनारे से दूसरे किनारे तक पार किया और उसके कई भागों को अच्छी तरह देख डाला। उनके लगभग सभी साथी इस कठिन यात्रा में काम आये और वह स्वयं भी कई बार अधमरे हो हो कर अपने देश को लौटे। उन्होंने संसार के सामने इस मरुभूमि के संबंध में जो बातें उपस्थित की हैं वह अत्यन्त मनोरंजक हैं। डाक्टर स्विन हेडेन और उनके साथी बड़े विद्या-प्रेमी और उत्साही अन्वेषक थे। उन्होंने केवल अपने विद्या-प्रेम के कारण कई बार अपनी जान जोखिम में डाली और निःस्वार्थ परिश्रम करके मानव सभ्यता के बहुत पुराने रूप को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया। यह विशेषता केवल डॉक्टर स्विन हेडेन और उनके साथियों ही की नहीं किन्तु सारे योरोपीय जातियों की है। ज्ञान-वृद्धि के लिए योरप की सारी जातियों के बड़े से बड़े व्यक्ति उद्योग करते हैं और यदि कोई ऊँची से ऊँची पहाड़ की चोटियों पर चढ़ने जाता है तो दूसरा गहरे से गहरे समुद्र की तह की खोज करता है। यही कारण है कि उनके

व्यापार, कला-कौशल और विज्ञान में दिन पर दिन वृद्धि होती जाती है।

मध्य-एशिया की यह मरुभूमि दो भागों में विभाजित की जाती है। एक का नाम तकलामाकन और दूसरे का गोबी है। तकलामाकन संसार के सारे मरुस्थलों से अधिक वीरान और निर्जन है। उसका आकार अंडे की तरह गोल है और उसके बाहरी हिस्से में चारों ओर पहाड़ियाँ हैं जिनसे अनेक सोते और झरने निकलते हैं। यह सब झरने और सोते पहाड़ियों से पन्द्रह-बीस मील दूर तक की भूमि को सींच कर बालू में लुप्त हो जाते हैं। यह पन्द्रह-बीस मील चौड़ी हरी भूमि लगभग मरुस्थल के चारों ओर चली गयी है। कहीं कहीं उसकी चौड़ाई चार-छः मील से अधिक नहीं है। इस हरी भरी भूमि में लोग शान्त और सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। और इस भूमि के बाद से वह चौड़ा-चकला मरुस्थल शुरू हो जाता है जिस पर यम का राज्य स्थापित है। कुछ दूर तक बालू का रंग मटियाला या भूरा है परन्तु जैसे जैसे फ़ासला बढ़ता जाता है उसका रंग पीला होता जाता है और मरुभूमि के मध्य तक पहुँचने पर वह बिल्कुल लाल रंग की हो जाती है। मरुभूमि में बालू की वही दशा दिखाई देती है जो प्रचंड आँधी चलने के समय समुद्र के जल की होती है। यदि किसी स्थान पर बालू के ऊँचे ऊँचे ढेर लगे हुए हैं तो कहीं बड़े गढ़े बनते चले गये हैं। हर तरफ़ बालू की लहरें सी उठती रहती हैं जिनकी ऊँचाई दस-बारह फ़ीट

से लेकर ढाई-तीन सौ फ़ीट तक होती है। प्रचंड वायु के चलने से बालू का यह समुद्र एक ओर से दूसरी ओर को हिलोरें लेता रहता है। बालू की लहरों के उठने में एक बड़ा ही अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। पहले तो लहर के दोनों सिरों से दो सींग से निकल आते हैं और फिर बीच के स्थान में बालू का ढेर फुर्ती से खिसक आता है। चाँदनी रात में मरुभूमि का दृश्य बड़ा ही विचित्र होता है मानो सामने किसी दैवीशक्ति ने उमड़ते हुए समुद्र के जल को जमा दिया हो। जिधर देखिए एक सन्नाटा छाया हुआ है और मीलों तक किसी मच्छर की भी भिनभिनाहट सुनाई नहीं देती। न कोई पेड़ है न पौदा, न पशु है न पक्षी। पृथ्वी पर इस मरुभूमि के ऐसा शून्य और निर्जन स्थान कोई नहीं है।

किसी समय में एक चीनी यात्री इस विस्तृत मरुभूमि को पार कर के भारतवर्ष में आया था और कुछ काल यहाँ रह कर अपने देश को वापस गया था। उसने अपने देशवासियों से अपनी यात्रा के आश्चर्यजनक अनुभवों का वर्णन करते हुए इस मरुभूमि के संबंध में भी कुछ बातें कही थीं। इस मरुभूमि के आसपास के निवासी भी उसी प्रकार का वर्णन अब भी करते हैं। डाक्टर स्विन हेडेन ने इन्हीं लोगों से सुना था कि मरुभूमि के मध्य में बड़े बड़े नगर और ऊँचे ऊँचे मंदिर और महल मौजूद हैं। इन लोगों ने अक्सर मुसाफ़िरों से कहा है कि जो कोई आदमी जंगली ऊँटों का शिकार करने दूर निकल

जाता है और सौभाग्यवश जीवित लौट आता है वह ऐसे नगरों का वर्णन करता है कि जिनमें सोने के मकान बने हुए हैं और उन मकानों में भूत रहते हैं। इन लोगों का कहना है कि मरुभूमि के मध्य में जो नगर बालू में दबे हुए हैं उनके चारों ओर बड़े बड़े जंगल लगे हुए हैं। यदि कोई वहां से कुछ बाहर ले जाने का प्रयत्न करता है तो भूत उसका रास्ता भुला देते हैं और वह इधर उधर भटकता हुआ भूख और प्यास की तेज़ी से तड़प तड़प कर मर जाता है। कहा जाता है कि किसी समय में इस भूखंड के निवासी अत्यन्त दुष्कर्मी और पापी थे। दैवयोग से एक समय वहाँ कोई महात्मा जा पहुँचा और उसने कुछ काल तक वहाँ रहकर उनको उचित मार्ग पर लाने की चेष्टा भी की। उस महात्मा के उपदेश का उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा और वह उससे घृणा करने लगे। यहाँ तक कि राजा से उस महात्मा को झूठा दोष लगा कर कड़ा दण्ड दिलवाया। महात्मा ने उन लोगों को क्रुद्ध होकर शाप दिया कि वह भू-भाग सात दिन के भीतर नष्ट-भ्रष्ट हो जावेगा। उन लोगों ने इस शाप की भी हँसी उड़ाई और महात्मा के कहने की कुछ परवा न की। कहा जाता है कि अभी सातवाँ दिन बीतने न पाया था कि आकाश पर काले बादल एकत्रित होने लगे और संध्या होते होते उस सारे प्रान्त पर बालू की वर्षा होने लगी जो बराबर सात दिन और सात रात तक होती रही यहाँ तक कि वह सारा देश रेत में डूब गया।

मरुभूमि के बाहर की आबादियों के निवासी उन प्राचीन नगरों के अब तक मौजूद होने में पूरा विश्वास रखते हैं। किन्तु उनका विश्वास है कि उन नगरों के निवासी साधारण मनुष्यों से या तो बिल्कुल भिन्न हैं या शारीरिक बन्धनों से मुक्त आत्माएँ हैं। मरुभूमि की दशा को देखते हुए आज यह समझना असंभव है कि उस उजाड़ खंड में वास्तव में कोई नगर या बस्तियाँ बसी हुई हैं। संभव है कि जो यात्री कभी इस सुनसान भूखंड में जा पहुँचे हों उन्हें कोई भ्रान्ति-जनक वस्तुएँ दिखाई दी हों और उनको भ्रम हो गया हो। डॉक्टर स्विन हेडेन को स्वयं एक बार ऐसा ही भ्रम हो गया था। वे प्यास से अत्यन्त पीडित थे कि इतने में उन्हें एक बड़ा सुन्दर स्थान दिखाई पड़ा और ऐसा जान पड़ा कि मानों वह एक नदी के किनारे किसी पुष्प-वाटिका में बैठे हों और शीतल वायु बह रही हो।

डॉक्टर स्विन हेडेन ने मरुभूमि के बाहर रहने वाले लोगों की कहानियों को सुन कर इस अनुमान पर कार्य आरंभ किया था कि ज़रूर बालू के ढेरों के नीचे बड़े बड़े नगर और ग्राम दबे पड़े हैं जिनको खोद निकालने पर मानव सभ्यता के आदिम रूप पर अच्छा प्रकाश पड़ सकेगा। उन्होंने कई बार तकला-माकन की मरुभूमि में यह कह कर प्रवेश किया कि वे एक प्राचीन राजधानी का पता लगाने जा रहे हैं। एक बार वह मरुभूमि के मध्यभाग तक पहुँच भी गये थे किन्तु उनके बहुत से साथियों

और बोझ ढोने वाले पशुओं की मृत्यु हो जाने के कारण, बड़ी कठिनाई से चौपायों की भाँति चल कर, वह किसी तरह अकेले बाहर निकल आये। दूसरी बार वह अपने साथ बहुत बड़े समूह को लेकर पुराने साथियों और मित्रों की सहायता करने और भूमितल में दबे हुए नगरों को खोज निकालने गये। बालू के ऊँचे-ऊँचे ढेरों के बीच से चले जा रहे थे कि इतने में उन्हें कुछ अद्भुत वृक्षों के सूखे हुए धड़ दिखाई पड़े। इन वृक्षों का रंग भूरा था और वह शीशे के समान नाज़ुक हो गये थे। प्रचंड वायु बहने के कारण इन वृक्षों की जड़ें ऊपर की ओर उभर आई थीं और हज़ारों वर्ष की धूप और गर्मी लगते लगते उनका रंग भूरा हो गया था। धूप और गर्मी ही के कारण उनकी शाखाएँ रेशम के जले हुए डोरी के समान ऐंठ गई थीं। देखने से साफ़ मालूम होता था कि यह सारे वृक्ष किसी पुराने जंगल के बचे-खुचे वृक्ष थे। इन वृक्षों को देख कर डॉक्टर स्विन हेडेन के हृदय में बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ और वह उसके बाद खोज के काम में और भी अधिक जोश के साथ लग गये।

इन वृक्षों से कुछ दूर आगे बढ़ कर डाक्टर स्विन हेडेन को कुछ खँडहर दिखाई पड़े जिनके चिह्न जहाँ-तहाँ पाँच-छः मील तक मिलते गये। इन खँडहरों के ऊपर की बालू खोद कर हटाई गई तो नीचे से पक्की दीवारें और चौड़ी-चौड़ी सड़कें निकल आईं। कुछ दूर पर ऐसे मकान दिखाई पड़े जिनके कँगूरे और छतों की मुँडेरें रेत के ढेरों से बाहर निकली हुई थीं। एक

कँगूरे के पास की बालू हटाई गई तो बड़ा सुन्दर मन्दिर निकल आया। डाक्टर स्विन हेडेन ने लिखा है कि जब उन्होंने इस मंदिर में प्रवेश किया तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। मंदिर की दीवारों पर बड़े ही सुन्दर चमकते हुए चित्र बने थे। जब दीवारें साफ़ की गईं तो तरह-तरह के जन्तुओं और पक्षियों के अलावा सुन्दर मनुष्यों के भी चित्र निकल आये। इन चित्रों में से कई एक नदियों के दृश्य के भी थे जिन्हें देखकर डॉक्टर स्विन हेडेन के हृदय पर एक अद्भुत प्रभाव पड़ा। वास्तव में जहाँ सहस्रों मील तक एक बूंद पानी दुर्लभ हो वहाँ उमड़ती हुई नदी के दृश्यों को देख कर हृदय पर प्रभाव क्यों न पड़े! एक जगह इन लोगों को पनचक्की का पाट मिला जिसे देख कर भी सब के हृदय में उसी तरह के भाव उत्पन्न हुए। बड़े परिश्रम और होशियारी से बालू खोद-खोद कर निकाली गयी तो बहुत तरह की चीज़ें हाथ आयीं। एक मकान के खँडहर के पास बगीचे के चिह्न पाये गये। बालू हटाने पर वहाँ खूबानी और आलू-बोखारे के सूखे तने मिले। बहुत सी जगहों पर मिट्टी के बर्तन या उनके टुकड़े पाये गये। चर्खे, किताबें, लकड़ी की खुदी हुई पटरियाँ, बेल-बूटे कढ़े हुए रेशमी कपड़ों के टुकड़े और अनेकों प्रकार की वस्तुएँ मकानों में मिलीं।

डॉक्टर स्विन हेडेन की खोज का हाल सारे संसार में फैल गया। उनके परिश्रम और उत्साह की धूम मच गई। बड़े-बड़े विद्या-प्रेमियों और इतिहास जानने वालों की दृष्टि तकलामाकन

और गोबी की मरुभूमि की ओर उठ गईं। सभ्यता के आदि-पर्व पर अकस्मात प्रकाश पड़ा और मरुभूमि के प्राचीन खँडहर और उनमें मिली हुई वस्तुएँ प्राचीन सभ्यता के रूप को प्रकट करने लगीं। तकलामाकन का गुप्त रहस्य प्रकट होते ही मध्य-एशिया के उन टिड्डीदलों का भी पता चल गया जिनकी विजय ने दक्षिण एशिया, फ़ारस और दक्षिण योरप के इतिहास को रक्त से रँग दिया था। गोबी और तकलामाकन की मरुभूमि का रहस्य जानने की जिन लोगों को धुन समाई हुई थी वह डॉक्टर श्विन हेडेन के अनुसंधान का पता पाते ही प्रसन्नता से उछल पड़े। अँग्रेज़, फ्रांसीसी, अमेरिकन, डच सभी जातियों के साहसी लोग सत्य की खोज में कटि-बद्ध होकर कर्मक्षेत्र में उतर आये और उनके कई दल अलग-अलग दिशाओं से मरुभूमि को छान डालने के उद्देश्य से चल खड़े हुए। इस दुर्गम और सुनसान मरुभूमि के आदिम निवासियों के जो कुछ हाल अभी तक प्रकट हुए हैं उनकी खोज में प्रायः सभी सभ्य जातियों का सराहनीय प्रयत्न सम्मिलित है।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इस सुनसान मरुभूमि में, जिस पर आज सूर्य को धुँधला कर देने वाली धूल छाई रहती है और जिस पर सूखी रेत का भयंकर समुद्र लहरें मारता रहता है, एक उन्नत और सभ्य जाति निवास करती थी। स्वच्छ जल की नदियाँ जगह-जगह पर बहती थीं और सारे देश को हरा-भरा बनाये रहती थीं। नदियों और बड़ी बड़ी झीलों के किनारों

पर शहर और क़स्बे बसे थे। शहरों में बड़े बड़े महल और ऊँचे ऊँचे सोने के कलश चढ़े हुए मन्दिर बने थे। इस देश के राजा दूर दूर के देशों पर राज्य करते थे। यहाँ के कला-कौशल की अन्य देशों में प्रसिद्धि थी और यहाँ के व्यापारी दूर दूर तक माल भेजा करते थे।

जिस वर्ष डाक्टर स्विन हेडेन के अनुसंधान का वर्णन प्रकाशित हुआ उसी वर्ष कलकत्ते के सरकारी कर्मचारी, सर आर्लस्टीन, ने भारत सरकार के सम्मुख अपने विचार और अभिप्राय इसलिए पेश किये कि उन्हें मध्य-एशिया की मरुभूमि की खोज के लिए सरकारी मदद दी जाय। वह इससे कई वर्ष पहले अपने ख़र्चे से गोबी की मरुभूमि में जा चुके थे और उनको कुछ ऐसी हस्तलिखित पुस्तकें मिल चुकी थीं जिनकी भाषा संसार की सब भाषाओं से अलग और निराली थी। यह पुस्तकें सर आर्ल स्टीन को मरुभूमि के निवासियों से मिली थीं। चीनी भाषा में जो कुछ किताबें मरुभूमि के सम्बन्ध में लिखी गयी थीं वह उन्होंने प्राप्त की थीं और उनमें लिखे हुए वृत्तान्तों को वह श्रद्धा से पढ़ते थे। उन्हें उन सारे क़िस्सों में भी विश्वास था जो चीनी यात्रियों के कहे हुए थे। सर आर्ल स्टीन को जब कभी सरकारी कामों से फ़ुरसत मिलती या दो-चार महीने की छुट्टी ले सकते तो वह अपने ख़र्चे से इस बाहरी भाग में अन्वेषण करने जाया करते थे। उन्हें विश्वास था कि मरुभूमि का हाल भी उसी प्रकार सत्य निकलेगा जैसे चीनी

यात्रियों द्वारा लिखा हुआ अन्य देशों का हाल सत्य निकल चुका था। डाक्टर स्विन हेडेन के अनुसंधान ने उनकी दृष्टि में प्राचीन कथाओं को विश्वसनीय सिद्ध कर दिया।

भारत सरकार ने सर आर्ल स्टीन को आर्थिक सहायता दी और उन्होंने सन् १८९९ में मरुभूमि की यात्रा की। उन्होंने बहुत सी ऐसी जगहें बालू के नीचे से खोद निकालीं जिन पर सैकड़ों फ़ीट बालू जमा थी। प्रचंड आँधियों का सामना किया और लकड़ी के बड़े बड़े पुश्ते बाँध कर बालू को फैलने से रोका। उनके साहसी पथ-प्रदर्शक जो कई कई बार और अनुसंधानकों के साथ मरुभूमि की यात्रा कर चुके थे उनकी तत्परता और साहस पर आश्चर्य करते थे। एक बार जब वह मरुभूमि के मध्य भाग की ओर जा रहे थे, आकाश में ऐसी धूल छा गई कि दिन को रात कर दिया। कई घन्टे ऐसी प्रचंड आँधी चलती रही कि पाँव तले से बालू खिसकी जाती थी। उनके साथियों का दल तितर-बितर हो गया था और किसी को यह मालूम न था कि कौन किधर जा रहा है। जिस समय आँधी बन्द हुई तो कोई यह न बता सका कि वह मरुभूमि के किस भाग में पहुँच गये। प्यास से उनका बुरा हाल था और पानी बहुत कम रह गया था। कुछ लोगों ने आगे बढ़ने से इन्कार किया और लड़ने पर तुल गये। सर आर्ल स्टीन अपने इरादे के पक्के थे। अपने साथियों में कलह देख कर वह अकेले ही चलने को तैयार हो गये। उनकी इस दृढ़ता का यह

प्रभाव पड़ा कि उनके कुछ साथी संकोचवश उनके साथ हो लिए। थोड़ी ही दूर चलने पर उन्हें कुछ खँडहर दिखाई दिये और उन खँडहरों के पास पानी भी मिल गया जिससे सबका मन हरा हो गया। यह खँडहर उसी नगर के थे जिसे खोद निकालने के लिए यह सब लोग आये थे।

तकलामाकन और गोबी के अनुसंधानों से जो प्रश्न उठते हैं उनका हल करना सहल नहीं। वह मरुभूमि कब और कैसे बनी? इस भूभाग की जनता किधर लुप्त हो गयी? इस देश की सभ्यता पर कितना और किस किस सभ्यता का प्रभाव पड़ा था? यह अनुसंधान मानव इतिहास के चित्र की कहाँ तक पूर्ति करते हैं? इन सब प्रश्नों का जो उत्तर अनुसंधान-कर्ताओं ने दिया है उसके कल्पित भाग से चाहे हम सहमत हों या न हों किन्तु जहाँ तक वास्तविकता का संबंध है हम किसी प्रकार सत्य से मुँह नहीं मोड़ सकते। जो चीजें इस मरुभूमि में पायी गई हैं और हस्तलिखित पुस्तकों या चित्रों से जो बातें मालूम होती हैं उनसे साफ़ पता चलता है कि इस भूखंड का जलवायु कई हज़ार वर्ष पहले आजकल की अपेक्षा कहीं अधिक आर्द्र था। देश बड़ा उपजाऊ था और सब तरह के नाज और फल पैदा होते थे। बालू के नीचे से कई तरह के नाज और फलों के वृक्ष मिले हैं। कुछ मकानों में बड़े सुन्दर क़ालीन और चिकन के काम किये हुए रेशमी कपड़े निकले हैं। रेशम और मूंज की महीन डोरी से बनी हुई ऐसी चट्टियाँ मिली हैं जैसी पुलहरू

नाम से काश्मीर में अब तक पहनी जाती हैं। सैकड़ों ऐसी हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं जो संसार की प्राचीन भाषाओं में लिखी हुई हैं। इन पुस्तकों की स्याही अब तक ऐसी चमकदार मालूम होती है जैसे वह अभी लिखी गई हो। यही हाल उन चित्रों का भी है जो मन्दिरों की दीवारों पर बने हैं। कारण यह है कि मरुभूमि की बालू बिल्कुल खुश्क होने की वजह से उसके नीचे की दबी हुई किसी चीज़ में परिवर्तन नहीं हुआ। यदि बालू में कुछ भी नमी होती तो सभी चीज़ों में परिवर्तन हो जाता। कुछ चित्र जो दीवारों पर बने हैं वह बिल्कुल भारतीय ढंग के मालूम होते हैं। उनमें भारतीय आभूषण और वस्त्र चित्रित हैं और जो बेल-बूटे की सजावट चित्रों के चारों ओर बनी है वह भी भारतीय मालूम होती है। पत्थर के खुदाव के काम से भारतीय और चीनी प्रभाव का अनुमान होता है।

जो पुस्तकें मरुभूमि के बाहरी खंड के निवासियों से प्राप्त हुई हैं उनको पढ़ने का प्रयत्न किया जा रहा है परन्तु अभी तक ठीक तरह से पढ़ी नहीं जा सकीं। जो बातें इस समय तक जानी जा सकी हैं उनसे पता चलता है कि लगभग ढाई हज़ार वर्ष पूर्व वायु में नमी कम हो गयी थी जिसके कारण मोराक्को राज्य से लेकर मञ्चूरिया तक साढ़े तीन हज़ार मील लम्बा भूखंड सूखने लगा था। इस घटना का पता हम को कई प्रकार से लगता है। तकलामाकन में कुछ पुराने लेख मिले हैं जिनसे पता चलता है कि उस देश के निवासियों ने चीन की सहायता

के लिए कई बार सेनाएँ भेजी थीं। सर आर्ल स्टीन ने चीन की दीवार के साथ साथ क़िलों के जो खँडहर ढूँढ़ निकाले हैं वह उन आक्रमणों के प्रमाण हैं जो मरुभूमि के बाहरी खंडों में रहने वाली जातियों ने चीन देश पर किये थे। अनुमान किया जाता है कि जिस समय मंचूरिया की सीमा तक चरागाह सूख गये तो उन जातियों को सबसे पहले नुक़सान पहुँचा जो भेड़, बकरी या अन्य पशुओं को पाल कर जीविका का प्रबन्ध करती थीं, और अब इस परिस्थिति में वे पड़ोस के धनसम्पन्न देशों को लूट-मार कर निर्वाह करने लगीं। कदाचित् सबसे पहले इन लोगों का ध्यान चीन देश की ओर गया और इसके बाद भारतवर्ष और योरोपीय देशों पर उन्होंने आक्रमण किये। इतिहास में जो जातियाँ हूण के नाम से प्रसिद्ध हैं वह शायद यही लोग थे। इन्हीं जातियों के कारण सारे योरप में भगदड़ सी पड़ गई थी। इन्हीं जातियों के ऐटिला नामक सर्दार ने एक बड़े टिड्डीदल के साथ फ्रांस पर आक्रमण किया था और जिसको गॉथ और रोमन लोगों ने मिलकर परास्त किया था। अभी तक इस बात का प्रमाण नहीं मिल सका है कि तकलामाकन और गोबी के नगरों को भी इन्हीं जातियों ने नष्ट-भ्रष्ट किया था या नहीं। संभव है कि मरुभूमि के बलवान लोगों ने इनका सामना बड़ी सफलता से किया हो क्योंकि हूण जाति के आक्रमणों के सदियों बाद तक तकलामाकन में कुछ शहर और बस्तियाँ मौजूद थीं।

इस मरुभूमि के बाहरी भाग में जो लोग इस समय निवास करते हैं वह शायद उन जातियों की संतान हैं जो तकलामाकन की भूमि के मरुस्थल में परिवर्तित हो जाने के पहले वहाँ निवास करती थीं। अन्य जातियों से मिश्रित हो जाने के कारण उन्हें देख कर उनके पूर्वजों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। उनकी भाषा भी बदल गई है। अमेरिका निवासी मिस्टर हन्टिंग्टन के अन्वेषण से जान पड़ता है कि जिस जन-समूह ने हज़रत इब्राहीम के जीवन काल में बैबिलॉन पर विजय प्राप्त की थी या जिन जातियों ने फ़ारस को परास्त करके सीरिया पर अधिकार जमाया था और जिन्होंने इसके बाद मिश्र देश पर आक्रमण किये थे वह इसी जाति के पूर्वज थे। मिश्र देश के वह राजा जिनके नाम के साथ "गड़रिया" शब्द सम्मिलित था वास्तव में इसी जाति के लोग थे। फ़ारस, सीरिया या मिश्र देश की पुस्तकों में जो उल्लेख पाये जाते हैं उनसे प्रकट होता है कि इन विजयी जातियों के लोग घोड़ों पर चढ़ते थे जिस कारण अन्य जातियों की अपेक्षा यह लोग अधिक शीघ्रता से दूर दूर देशों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर सकते थे। जिन जंगली घोड़ों को यह लोग अपने काम में लाते थे उन घोड़ों की नस्ल के घोड़े तकलामाकन की मरुभूमि के उत्तरी जंगलों में अब भी बहुत पाये जाते हैं।

भारतवर्ष और योरप के जिन आदिम निवासियों पर इन जातियों ने विजय प्राप्त की थी उन पर अपना प्रभाव डालने

और उनमें जातीयता का विचार पैदा करने में शताब्दियाँ लग गईं। यूनानी, रोमन, जर्मन, और योरप की सभी उन्नतिशील जातियाँ उसी सम्मिश्रण के फल-स्वरूप हैं। यह बात निश्चित है कि मध्य-एशिया का यह भू-खंड मानव सभ्यता का सबसे पहला केन्द्र था। इसी भू-खंड से उन सब जातियों ने प्रस्थान किया था जिनकी सभ्यता ने उन सब देशों की सभ्यताओं से टक्कर खाकर वर्तमान रूप धारण किया है। यही कारण है कि हरएक जाति की रीति और रिवाज, विचार और भाव एक आंतरिक समता के बाहरी रूप हैं। सर आर्ल स्टीन ने तकला-माकन के खँडहरों से जो चीजें एकत्रित करके ब्रिटिश म्यूज़ियम में भेजी हैं उनसे बहुत सी ऐतिहासिक समस्याएँ हल हो जायेंगी। हम लोगों को डाक्टर स्विन हेडेन, सर आर्ल स्टीन और उन सब अनुसंधानकर्त्ताओं का कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने सत्य की खोज में ऐसे कठिन परिश्रम किये और अपनी जान तक जोखिम में डाली। मानव इतिहास के अज्ञातकाल पर प्रकाश डालने की जितनी चेष्टा की जाती है उस सब प्रयत्न का परिणाम हमारी उन्नति और परस्पर मेल-जोल बढ़ाना होता है। ऐसे सारे अनुसंधान, चाहे वह पिरामिड के संबंध में हों या स्टोन हेंज के, चाहे मेक्सिको के प्राचीन खँडहरों का पता लगाया जाय या पॉम्पिआई नगर को खोद निकाला जाय, मानव इति-हास को एक क्रमबद्ध घटना के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। सर आर्ल स्टीन तकलामाकन की मरुभूमि में बालू

के बड़े बड़े ढेरों को खोद कर एक आकाश चुम्बित मंदिर के सोने से मढ़े हुए कलश को निकालते हैं, डाक्टर स्विन हेडेन एक घिसे हुए पत्थर पर लिखे हुए अक्षरों को पढ़ने का प्रयत्न करते हैं परन्तु दोनों का उद्देश्य यह होता है कि वह किसी प्रकार अपने और उस अज्ञात व्यक्ति के बीच में सम्बन्ध स्थापित कर सकें जिसके मस्तिष्क और हाथों की यह सब कृतियाँ हैं। जिस क्षण यह जान लिया गया कि उस अज्ञात व्यक्ति के विचार और भाव वही थे जो उनके हैं, बस उसी क्षण समस्या हल हो गई और यह सिद्ध हो गया कि अतीतकाल वर्तमानकाल से मिला-जुला है और गोबी की मरुभूमि की जातियाँ वास्तव में आजकल की उन्नत जातियों के साक्षी और अंशग्राही हैं। जिन हाथों ने मिश्र में पिरामिड बनाये, बैबिलॉन के विशाल भवनों का निर्माण किया वही हाथ यह हैं जो आज स्वतंत्रता की चमकती हुई, आकाश से टकराने वाली मूर्ति खड़ी कर रहे हैं। भारत के ताजमहल और इंगलैंड के वेस्टमिन्स्टर ऐबी के कोने कोने से हमारे पूर्वजों के बनाये हुए पृथ्वी में दबे हुए मंदिर अपने अस्तित्व की उच्च स्वर में घोषणा कर रहे हैं। चीन देश का पैगोडा आज भी तातारियों के खेमों की याद दिलाता है। मनुष्यमात्र की एक ही सत्ता है—चाहे वह नीला हो या पीला, चाहे वह बर्फ़ से ढँके हुए पहाड़ों की ठंडक से बचने के लिए चर्मवस्त्र धारण करे या वह गर्मी के कारण मलमल और तंज़ेब के कपड़े पहने। मनुष्य का स्वभाव और उसकी प्रकृति एक ही

सिद्धान्त के अन्तर्गत हैं। यही वह शिक्षा है जो मानव इतिहास हमें देता है और इसी शिक्षा में वह शक्ति है जो पृथ्वी की सारी जातियों के हृदयों में एकता का भाव उत्पन्न करके योरप और एशिया, इंगलिस्तान और हिंदुस्तान, चीन और रोम, सब देशों के बीच भाईचारे का संबंध पुष्ट कर सकती है।

दक्षिण ध्रुव की खोज

यदि हम अपने दुनिया के नक़शे को उस नक़शे से मिलान कर के देखें जो हमारे बाबा परबाबा के समय में स्कूलों में पढ़ाया जाता था तो हमें भूगोल-विद्या की उन्नति का हाल मालूम होगा। जहाँ जहाँ हमारे नक़शे में तिल रखने की जगह नहीं दिखाई देती वहाँ पुराने नक़शे में साफ़ मैदान नज़र आते हैं। किसी भी महाद्वीप या महासागर को देखिए, हमारे नक़शे में लिखी हुई सैकड़ों जगहें पुराने नक़शे से ग़ायब हैं। बहुत सी बड़ी बड़ी नदियाँ, न जाने कितने ऊँचे ऊँचे पहाड़, पुराने नक़शे में अधूरे बना कर छोड़ दिये गए हैं। कई उत्तरी देशों की चौहद्दी इसी प्रकार अधकटी लकीरों से बनाई गई है। मध्य-एशिया का लम्बा-चौड़ा भीतरी भाग सूना छोड़ दिया गया है। ध्रुवों के समीप वाले समुद्र और स्वयं ध्रुव-केन्द्र केवल एक संकेत बना कर दिखा दिये गये हैं। जिस समय में यह पुराने नक़शे बनाये गये थे, दुनिया की बहुत सी जगहों का हाल किसी को मालूम न था। अफ़रीका महाद्वीप की सहारा नामक मरुभूमि को किसी ने भी पार न किया था। नाइल नदी किन पहाड़ों से निकलती है, मानसरोवर कैलाश पर्वत से कितनी दूर है, अमेरिका की ग्रीनलैंड का उत्तरी भाग कैसा है, ध्रुवों के पास वाले समुद्र में

कौन से छोटे-बड़े द्वीप हिमतुषार से ढके पड़े हैं, यह सब बातें कोई भी भूगोल-विद्या जानने वाला नहीं जानता था।

परन्तु पिछले सौ-सवा-सौ वर्ष की खोज और अन्वेषण ने इस कमी को पूरा कर दिया। इस थोड़े से काल में लगभग सभी महाद्वीपों के दुर्गम से दुर्गम भीतरी भागों को साहसी पुरुषों ने एक ओर से दूसरी ओर तक छान डाला और सैकड़ों प्राचीन राजधानियाँ और जगत विख्यात नगर जंगलों और रेगिस्तानों के नीचे से खोज निकाले। इस सौ-सवा-सौ वर्ष के काल में जितना साहस भूगोल-सम्बन्धी अन्वेषणों में दिखाया गया और जितने वीर पुरुषों ने अपनी जान पर खेल कर नये नये द्वीपों और समुद्रों का हाल जानने में अपना ख़ून पसीना एक कर दिया, उससे अधिक साहस और पुरुषार्थ किसी दूसरे कार्य्य में नहीं लगाए गए। उत्तरी समुद्रों की छान-बीन करने के लिए सैकड़ों वीर पुरुष छोटी छोटी टोलियाँ बना कर और बहुत सा धन ख़र्च करके अपना घर बार क्या दुनिया तक से मुँह मोड़ कर जाते रहे और वहाँ की दशा के संबंध में कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त कर के लौटते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में उत्तरी ध्रुव-केन्द्र को निश्चित करने का भी प्रयत्न किया गया। साहसी खोज करने वालों ने जितनी कठिन यात्राएँ ध्रुवों के स्थान निश्चित करने में की हैं और जैसा पुरुषार्थ बर्फ़ से ढके हुए मैदानों में तरह तरह की कठिनाइयों को सह कर काम पूरा करने में दिखाया है उसको जितना

सराहा जाय कम है। दोनों ध्रुव और उनके चारों ओर के समुद्र भली-भाँति देख लिये गये हैं और वहाँ का हाल उन वैज्ञानिकों ने जो खोज करने वालों के साथ गये थे पुस्तकों में लिख दिया है।

ध्रुव देशीय वेश में रोअल्ड ऐमन्डसन्

दक्षिण ध्रुव पर सब से पहले पहुँचने वाला व्यक्ति रोअल्ड ऐमन्डसन् नामक एक नॉर्वे निवासी अन्वेषक था। उसका जन्म सन् १८७२ ईस्वी में एक बड़े और विख्यात नाविकों के घराने में हुआ था। उसके पिता के बहुत से जहाज़ चलते थे और यद्यपि वह स्वयं वाणिज्य के कार्यों में लगा हुआ था तो भी

हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०
२३१०
पुस्तकालय
इलाहाबाद

उसके घर में पूर्वजों की सुकृतियों का निरंतर चर्चा रहा करता था जिसे सुनकर ऐमन्डसन् अपनी बाल्यावस्था ही से समुद्र-यात्रा के लिए उत्तेजित हुआ करता था। उत्तरी समुद्र के ज़बर्दस्त डाकुओं से युद्ध करने का खेल उसे बहुत प्रिय था। ऐमन्डसन् का पिता उसे डाक्टर बनाना चाहता था और इसी लिए उसे क्रिस्टिएनिया यूनिवर्सिटी में डाक्टरी पढ़ने को भेज दिया था परन्तु ऐमन्डसन् की जैसे जैसे आयु बढ़ती गयी उसके हृदय में समुद्र-यात्रा और नाविक के काम करने की धुन समाती गई। डाक्टरी की शिक्षा समाप्त करने के पहले ही अपने अठारहवें वर्ष में उसने अपने पिता से अनुरोध करके जल-सेना में एक साधारण नाविक का पद ग्रहण कर लिया। जल-सेना में नौकर होते ही ऐमन्डसन् ने ऐसी मेहनत शुरू कर दी और अपने कर्तव्य पालन में ऐसा दत्तचित्त हो गया कि उसके अफ़सरों तथा साथियों को यह निश्चय हो गया कि वह एक दिन जल-सेना का बड़ा अफ़सर बनेगा। उसने एक के बाद दूसरी परीक्षा पास की और अपने कामों में प्रतिष्ठा पाई, यहाँ तक कि चार ही पाँच वर्ष में उसकी गणना नार्वे की जल-सेना के सब से निपुण अफ़सरों में होने लगी।

इन दिनों डॉक्टर नैनसेन की रोमाञ्चकारी यात्राओं और उनके सफल अन्वेषणों का वृत्तान्त नार्वे युवकों को उत्तेजित कर रहा था। सैकड़ों साहसी युवकों के हृदय में उत्तरी समुद्र पर जाने का उत्साह उत्पन्न हो गया था और वे वहाँ जाकर भौगो-

लिक अन्वेषणों में हिस्सा लेने और अपना पुरुषार्थ दिखाने के मंसूबे बाँध रहे थे। ऐमन्डसन् भी ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। इस प्रारंभिक समय में ऐमन्डसन् को उत्तरी समुद्र और उसके ऊपर बहते हुए बर्फ़ के पहाड़ों की शोभा अपनी ओर आकर्षित करती और उसे हिम और तुषार से ढँके हुए गुप्त रहस्यों को जानने की बड़ी उत्कंठा रहा करती। जहाज़ के सबसे ऊँचे भाग पर खड़े होकर वह दूर्बीन से सूर्योदय के प्रकाश में चमकते हुए बर्फ़ की बहती हुई चट्टानों को घंटों देखा करता। संध्या समय जब सूर्यास्त की लालिमा से सारा समुद्र जगमगा उठता और सामने का अद्भुत दृश्य उसके हृदय को उथल-पुथल कर देता तो वह उस प्रदेश को देखने और उसकी रहस्यमय निस्तब्धता का अनुमान कर सकने के उपाय सोचने लगता। ऐसे समय में ऐमन्डसन् के नवयुवक साथी उसके उत्साह से प्रभावित होकर उसे और भी उत्तेजित करते और मन ही मन में यही चाहा करते कि किसी प्रकार वे भी उस अन्वेषण में भाग ले सकते जिसके ऐमन्डसन् स्वप्न देखा करता था। वे ऐमन्डसन् को अपना नेता समझने लगे थे और भय और कठिनाई के अवसरों पर उसकी सूझ-बूझ और राय पर भरोसा किया करते थे। ऐमन्डसन् का डील-डौल, बल-बुद्धि, उसके सभी गुण, उसका स्वाभाविक नेता होना प्रकट करते थे। उसके भूरे बालों, नीली आँखों और सुडौल नाक-नक़शे से वह 'नौर्समन' जान पड़ता था। उसका समुद्र-संबंधी ज्ञान, उसकी नाविक के कार्यों में कुशलता

और अपने साथियों के हृदय पर उसका अच्छा प्रभाव—इन सब गुणों के कारण उसका नाम जल-सेना के ऐसे ऐसे अफ़सरों के साथ लिया जाता था जिन पर पूरा पूरा भरोसा किया जा सके।

इन अभिलाषाओं के पूरा करने का अवसर ऐमन्डसन् को उस समय प्राप्त हुआ जब बेल्जियम देश के अन्वेषकों की एक टोली ने अन्य जातियों के प्रतिनिधियों के साथ उसे भी उत्तरी समुद्र की खोज में साथ चलने को आमन्त्रित किया। अभी उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष की भी न थी। ऐसी महत्वपूर्ण खोज में योग देने के निमन्त्रण में ऐमन्डसन् की नाविकता और पुरुषार्थ का अच्छा सम्मान जान कर उसके मित्रों ने तुरन्त स्वीकार पत्र भिजवा दिया। सन् १८९७ ईस्वी के अगस्त में 'बेल्जिका' नामक जहाज़ का अफ़सर नियुक्त होकर ऐमन्डसन् उस रहस्यमय हिमलोक को चल दिया जिस पर विजय प्राप्त करना कुछ दिनों से उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य हो गया था। इस अन्वेषक टोली ने उत्तरी समुद्र में दो वर्ष से ऊपर काम किया। ऐमन्डसन् को अपने धैर्य, सुप्रयोग और चतुरता से काम लेने अथवा अपनी निर्भयता और साहस द्वारा बड़ी-बड़ी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के अनेक अवसर मिले। यद्यपि उपयोगी वस्तुओं के अभाव के कारण यह लोग वह सारे अनुसंधान समाप्त न कर सके जिनकी उन्हें आशा थी तो भी इस खोज से बहुत सी उपयोगी और विज्ञान-सम्बन्धी बातों का संग्रह हुआ

और अनेक प्रकार की मुसीबतें सहते हुए भी सब लोग यात्रा से बड़े संतुष्ट और प्रसन्न लौटे।

इस यात्रा ने ऐमन्डसन् के हृदय में पहले से भी अधिक प्रबल अभिलाषा उत्पन्न कर दी और वह अब हिमलोक को पार करके ध्रुव तक पहुँचने के स्वप्न देखने लगा। उस अद्भुत प्रदेश-सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें उसे मिल सकीं उसने वह सब पढ़ डालीं। पिछले दो वर्ष के अनुभवों से जो सूचनाएँ उसे प्राप्त हुई थीं उन सब पर अच्छी तरह विचार करके आगामी यात्राओं के लिए वह अपने को तैयार करने लगा। इस यात्रा से उसने धीरज और सहनशीलता का पाठ सीखा था। अब वह यह भी अच्छी तरह जान गया था कि जो काम बल और वीरता से नहीं निकल सकते वह अग्रदृष्टि से निकलते हैं। यात्रा की लगभग सभी कठिनाइयों की छोटी-छोटी बातों का पहले से ध्यान रखने से दूर किया जा सकता है। सन् १९०१ में जब वह फिर उत्तरी समुद्र की यात्रा को गया तो उसने पहले ही से अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करने के उपाय सोच रक्खे थे और लगभग सभी आवश्यक वस्तुयें साथ ले ली थीं। इस यात्रा में उसने कुत्तों की प्रकृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया और उनको साधने और उनसे गाड़ी खींचने का काम लेने की विधि सीखी।

जून सन् १९०३ की १७ तारीख को ऐमन्डसन् ने एक बड़ी गम्भीर और महत्वपूर्ण यात्रा पर क़दम बढ़ाया। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य तो उत्तरी ध्रुव-केन्द्र का निश्चित करना था

परन्तु ऐमन्डसन् का इरादा लौटते समय उस रास्ते की खोज का भी था जो ऐटलांटिक महासागर को पैसिफ़िक महासागर से मिलाता है। उसने महीनों पहले से बड़ी सूझ-बूझ को काम में लाकर सब सामग्री एकत्रित की थी। उसने अपनी तैयारी में ऐसी कोई भी कमी न छोड़ी थी जिससे यात्रा में किसी प्रकार का विघ्न पड़ सकता। बड़ी होशियारी से उसने एक शिकारी नाव में मिट्टी के तेल से चलने वाला इञ्जिन लगाकर अपनी यात्रा के लिए ठीक किया था। जो सात आदमी उसके साथ थे वे सब बड़े मुस्तैद और निडर थे। उन सब को ऐमन्डसन् की सूझ-बूझ और सावधानी पर बड़ा भरोसा था। जिस प्रदेश में वह जा रहे थे उसमें पग-पग पर बहती हुई बर्फ़ से नाव टकरा जाने का डर रहता था। इस कारण नाव बहुत धीरे धीरे और बड़ी होशियारी से चलाई जाती थी। ऐटलांटिक महासागर के टुकड़े को पार कर चुकने के बाद ऐमन्डसन् उत्तरी अमेरिका के उत्तर-पूरब कोण की ओर बढ़ा और फिर ग्रीनलैंड के उत्तरी किनारे के द्वीपों के पास और खाड़ियों में होता हुआ बूथिया नामक प्रायद्वीप में पहुँचा। लगभग उन्नीस महीनों तक यह लोग हर तरह के ख़तरों से गुज़रते हुए आगे बढ़ते चले गये। कभी-कभी ऐमन्डसन् अपनी नाव को ठहरा देता और बर्फ़ से ढके हुए सुनसान और निर्जन बीहड़ बियाबानों में खोज के लिए बीसों मील निकल जाता। उत्तरी ग्रीनलैंड और उसके समीप के द्वीपों में सैकड़ों मील चक्कर लगा कर

उसने बहुत से अनुभव किये और उन वैज्ञानिक बातों द्वारा जिनका उसने बड़े परिश्रम से संचय किया था यह सिद्ध कर दिया कि उत्तरी मैगनेटिक ध्रुव-केन्द्र जिसे पहले सर जॉन रौस ने निश्चित किया था वास्तव में एक ऐसा अस्थिर केन्द्र है जिसका कोई विशेष स्थान निश्चित नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों ने ऐमन्डसन् के इस निरीक्षण को इतना महत्व दिया कि यदि वह अपने जीवन में और कोई विशेष कार्य न भी करता तो केवल इसी सफलता के कारण उसकी गणना संसार के बड़े से बड़े अन्वेषकों में की जाती। किन्तु यह अन्वेषण उसकी आकांक्षा का केवल एक अंग था जिसके पूरे होने के बाद शीघ्र ही वह उस रास्ते की खोज में चल दिया जिसे पार करके वह लौटना चाहता था।

बहुत दिनों से उत्तरी समुद्रों के नाविक ऐटलांटिक महासागर से उत्तरी ध्रुव सागर को पार करके पैसिफ़िक महासागर में जाने का मार्ग खोजते आये थे परन्तु इस कार्य में किसी को भी सफलता प्राप्त न हुई थी। न जाने कितने सुविख्यात नाविकों ने असफल हो कर हार मान ली थी और न जाने कितने इस मार्ग की खोज में कठिनाइयाँ सहते सहते अपने जीवन तक को भी गँवा चुके थे। इस मार्ग के खोज निकालने का सौभाग्य ऐमन्डसन् को बदा था। अपनी यात्रा आरंभ करने के थोड़े ही दिन बाद उसको मालूम हुआ कि उससे पहले जाने वाले यात्रियों ने जो सूचनाएँ इस रास्ते के सम्बन्ध में दी थीं वह सब ग़लत

थीं। पुराने नाविकों के सहारे को छोड़कर ऐमन्डसन् ने नए सिरे से अपनी यात्रा का पथ निश्चित किया और उन सब कठिनाइयों को झेलने का उसने पक्का इरादा कर लिया जिन्हें वह पहले से जान न सकता था। लोगों के निषेध की परवाह न करके और केवल अपनी होशियारी और सूझ-बूझ पर भरोसा करके रास्ता ढूँढ़ निकालने को चल खड़ा हुआ। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि कैनेडा के उत्तरी समुद्र तट पर उसकी छोटी नाव को तोड़-फोड़ कर नाश कर देने वाले सैकड़ों ख़तरे हैं। बहती हुई बर्फ़ से टकरा जाना या भँवर में पड़कर किसी बड़े बर्फ़ के खुले हुए दर्रे में जा फँसना कोई अनोखी बात न होती। कुछ ही दिन पहले उसकी नाव के एञ्जिन में आग लगते लगते बची थी। ऐमन्डसन् के साथी अपनी बेबसी से कुछ घबरा भी रहे थे परन्तु किसी की हिम्मत उसके सामने न होती थी कि वह यात्रा से मुँह मोड़ने का नाम भी ले सके; और फिर ऐमन्डसन् को अपनी सफलता का पूरा विश्वास भी था।

लगभग अठारह महीने तक ऐमन्डसन् और उसके साथियों की ख़बर किसी को नहीं मिली। उसके देशवासियों को उन सारी आपत्तियों का कुछ कुछ बोध था जो इस यात्रा में पड़ सकती थीं। इस कारण ख़बर न मिलने से बहुतों को निश्चय हो गया कि ऐमन्डसन् और उसके साथी कहीं तबाह हो गये। वह लोग जो इस यात्रा में किसी प्रकार संबद्ध थे वह सब भी धीरे धीरे उसे भूलने लगे थे जब यकायक ख़बर आई कि

ऐमन्डसन् ईग्ल सिटी पहुँच गया। बर्फ़ के कारण वह अपनी यात्रा समाप्त न कर सका था। अलास्का के समुद्रतट से कई सौ मील दूर उसकी नाव बर्फ़ में फँसी पड़ी थी और वह स्वयं किसी प्रकार कुत्तेगाड़ी पर या पैदल कैनेडा के बीहड़ बर्फ़िस्तानों को पार करके, संसार को यह विदित करने के लिए कि वह जीवित है, ईग्ल सीटी पहुँचा था। यहाँ कुछ दिन रहकर उसने वह सामग्री जो नाव में घट गई थी ख़रीदी और उसी महीने में वापस जाकर नाव खोल दी। सन् १९०६ के मार्च महीने के समाप्त होते होते उसने अपनी यात्रा का बाक़ी हिस्सा ख़त्म कर लिया और उत्तर-पश्चिमी रास्ते को सब से पहिली बार पार करने की कीर्ति प्राप्त की। सितम्बर मास में योरप के सभी देशों में ऐमन्डसन् का चर्चा फैल गया और अख़बारों में उसकी प्रशंसा छपने लगी। तीन वर्ष के अल्पकाल में ही उसने अपनी गिनती संसार के विख्यात अन्वेषकों में करा ली। प्रायः सभी देशों से उसके पास इस यात्रा के अनुभवों पर व्याख्यान देने को निमन्त्रण आने लगे। अगले दो वर्षों में उसने सैकड़ों व्याख्यान दिये और अपने अनुभवों को सुनाकर लाखों मर्द और औरतों को रोमांचित किया। इन व्याख्यानों द्वारा एस्किमो जाति के संबंध में संसार को बहुत सा हाल मालूम हुआ। हिमदेश के पशु-पक्षियों की प्रकृति और रहन-सहन का मनोहर वृत्तान्त सुन कर सैकड़ों वैज्ञानिकों के मन में वहाँ जाने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। कहा जाता है कि ऐमन्डसन् जब अपने

व्याख्यानों में हिमदेश की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करता था तो लोगों को ऐसा जान पड़ता था कि मानों वे किसी बड़े कवि की रचना सुन रहे हों और भूलोक से बाहर का कोई अलौकिक दृश्य उनकी आँखों के सामने से गुज़र रहा हो।

सन् १६०८ के लगभग ऐमन्डसन् ने नॉर्विजियन भौगोलिक सुसाइटी के सामने उत्तरी ध्रुव समुद्र के अन्वेषण का प्रस्ताव रखा। जो नक़शे उसने पेश किये और जो रास्ते उसने तजवीज़ किये उनसे यह सिद्ध कर दिखाया कि यदि उस रीति से हिम-देश पर धावा किया जाय तो ध्रुव तक पहुँचना असम्भव न होगा। सुसाइटी के सभी लोग ऐमन्डसन् के साहस को देख कर चकित रह गए। जिस रीति से बर्फ़ के साथ बह कर वह ध्रुव के पार जाना चाहता था उसकी किसी को स्वप्न में भी हिम्मत न हुई थी। डाक्टर नैनसेन ने ऐमन्डसन् को उत्साहित किया और अपना "फ्रैम" नामक वह प्रसिद्ध जहाज़ यात्रा के लिए उसे दिया जिसमें वह स्वयं चिरस्मरणीय यात्राएँ कर चुके थे। देशवासियों से जब इस कार्य में योग देने की प्रार्थना की गई तो चारों ओर से रुपया आने लगा। नार्वे के राजा और रानी ने भी चन्दा दिया।

सन् १६०६ की ग्रीष्म ऋतु में जब ऐमन्डसन् ने अपनी यात्रा की सब तैयारी कर ली थी, यकायक ख़बर फैल गई कि पियरी नामक एक अमेरिकन उत्तरी ध्रुव पर पहुँच गया। इस सूचना ने देश में सनसनी पैदा कर दी और ऐमन्डसन् के

मित्रों को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे उनके सारे मंसूबों पर पानी पड़ गया हो। इस आशा भंग करने वाली सूचना ने ऐमन्डसन् पर भी कुछ देर के लिए अपना प्रभाव डाला, और यदि वह इतना धीर और उदार हृदय मनुष्य न होता तो शायद उसका उत्साह सदा के लिए ठंडा हो जाता। परन्तु उसने इस सूचना को सुनी-अनसुनी करके अपने काम जारी रक्खे और यात्रा की पूरी तैयारी हो जाने पर सन् १९१० के ग्रीष्म-काल में अपने प्रस्थान की तिथि बिना बताए एक रात्रि को जहाज़ का लंगर उठा दिया और वह चुपचाप ध्रुव समुद्र की ओर चल दिया।

ऐमन्डसन् और उसकी यात्रा की ओर से लोग ऐसे अनुराग-रहित हो गये थे कि उन्हें उसके सम्मान सहित विदा न करने का भी खेद न हुआ। यदि उत्तरी ध्रुव पर पियरी के पहुँच जाने की सूचना न आ गयी होती तो उत्तर-पश्चिमी रास्ते के साहसी पार करने वाले को बिदाई देने की चारों ओर धूम मच गयी होती। किन्तु अब ऐमन्डसन् और उसकी यात्रा की महिमा ख़त्म हो चुकी थी। वह लोग भी जिन्होंने जी खोल कर उसकी यात्रा के लिए आर्थिक सहायता दी थी अब उससे कोई विशेष आशा न रखते थे। उसके चले जाने के बाद किसी को इस बात की टोह न रही कि वह कहाँ और कैसा है।

ऐमन्डसन् के जाने के लगभग तीन महीने बाद किसी ने ऐटलांटिक सागर अन्तर्गत मेडियरा नामक द्वीप से सूचना पाई

कि उसने अपना पहला इरादा बदल कर अब दक्षिण ध्रुव पर पहुँचने की ठान ली है। इस सूचना से देश में खलबली मच गई। इंगलैंड के अन्वेषक कैप्टेन स्कॉट के दक्षिण ध्रुव की खोज में जा चुकने की सूचना कुछ दिन पहले देश में आ चुकी थी। ऐमन्डसन् के नए इरादे को सुनकर लोगों को फिर से उसकी यात्रा में दिलचस्पी पैदा हुई। साथ ही लोगों को इस बात के जानने की उत्कंठा हुई कि देखें दोनों साहसी और निडर अन्वेषकों में से कौन पहले अपने लक्ष्य पर पहुँचता है।

स्वयं ऐमन्डसन् को उस खलबली का कुछ भी ध्यान न हुआ जो नॉर्वे में और सारे संसार में उसके नये इरादे के कारण फैल गई थी। सितम्बर महीने के एक स्मरणीय दिन ऐमन्डसन् ने अपने साथियों को जहाज़ पर एकत्रित करके अपने नये मंसूबे उन्हें बताये। जहाज़ का कप्तान एक खुला हुआ नक़शा अपने हाथ में लिए उसके पास खड़ा था। ऐमन्डसन् उस नक़शे में बार बार अपने रास्ते की जगहों को दिखा कर उनसे अपनी नई तजवीज़ के बारे में कह रहा था और बड़े ग़ौर से उनके चेहरों को देख रहा था। उसने उन्हें बताया कि कैसे अनेकों वर्ष से वह उत्तरी ध्रुव पर पहुँचने के स्वप्न देख रहा था और तैयारियाँ कर रहा था, कैसे सब से पहले उत्तरी ध्रुव पर पहुँच कर वहाँ नार्वे का झंडा गाड़ना वह अपने जीवन का सब से बड़ा उद्देश्य समझता था, कैसे तैयारी हो जाने पर इस सूचना ने कि पियरी ने अमेरिका का झंडा

उत्तरी ध्रुव पर फहरा कर अपने देश के लिए कीर्ति प्राप्त कर ली थी उसे अपने देश का गौरव बढ़ाने के लिए मन में यह ठान लेना पड़ा था कि दक्षिण ध्रुव की विजय की कीर्ति नार्वे ही को मिलनी चाहिए। यह सब कह चुकने के बाद उसने अपने साथियों से सवाल किया कि क्या वे उसकी मदद करने को और इस नई यात्रा में उसके नेतृत्व में उन कठिनाइयों और खतरों का सामना करने को तैयार हैं जो दक्षिण ध्रुव पर पहुँचने में झेलनी होंगी? ऐमन्डसन् ने अपने साथियों को संबोधित करके कहा—"आपके जवाब के बिना मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता। मेरी सारी तजवीजें और सारे मंसूबे बिना आप के साथ दिये बिल्कुल बेकार हैं। मैंने जो कुछ इस समय आप से कहा है उस पर ठंडे दिल से विचार करके मुझे जवाब दीजिये।" ऐमन्डसन के साथियों के चेहरों पर आश्चर्य के चिन्ह अंकित थे। उसे उनके जवाब के लिए इन्तज़ार नहीं करना पड़ा। देखते देखते सब के चेहरे एक अद्भुत प्रसन्नता और गौरव के भावों से चमक उठे। ऐमन्डसन् अपनी 'साउथ पोल' नामक पुस्तक में लिखता है "मुझे अब ज़रा भी सन्देह नहीं रहा कि मेरे साथी मेरे सवाल का क्या जवाब देंगे। जब मैंने उनमें के प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग संबोधित कर के पूछा कि क्या वह मेरा साथ देने को तैयार है तो नाम लेते ही हर एक ने बड़े उत्साह के साथ साफ़ आवाज़ में "हाँ" कहा। उस ख़ुशी का उल्लेख बड़ा कठिन है जो मुझे यह जान कर

हुई थी कि मेरे साथियों में का प्रत्येक व्यक्ति उस गंभीर और गौरवपूर्ण कार्य में मेरा साथ देने को तैयार था।"

अँग्रेज़ी अख़बारों ने ऐमन्डसन् के यकायक उत्तरी ध्रुव जाने के इरादे को बदल कर दक्षिण ध्रुव की ओर चल देने पर बड़ा एतराज़ किया था। इंगलैंड के बहुत से लोगों ने यह शक किया कि जैसे ऐमन्डसन् ने जान-बूझ कर कैप्टेन स्कॉट को जो पहले से दक्षिण ध्रुव की ओर प्रस्थान कर चुके थे परेशानी में डालने के लिए अपना इरादा बदल दिया हो। इन आक्षेप करने वालों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि पियरी की सफलता की सूचना ने ऐमन्डसन् को जो अपनी यात्रा पर जाने को तैयार हो चुका था कितना परेशान किया था और उन सब लोगों के उत्साह को भंग कर दिया था जिन्होंने उसकी यात्रा के लिए रुपया दिया था। ऐमन्डसन् ने इन सारे आक्षेपों का नॉर्वे लौट आने के बाद संतोषजनक जवाब दिया और यह भी बताया कि मेडियरा से चलने के पहले ही उसने कैप्टेन स्कॉट को अपने दक्षिण ध्रुव की खोज में जाने के इरादे की सूचना दे दी थी।

जब सितम्बर मास की यात्रा में ऐमन्डसन् ने मेडियरा से प्रस्थान किया तो उसका इरादा "ग्रेट आइस बैरियर" या ध्रुव के चारों ओर के हिम प्रदेश के बाहर ही जाड़ा बिताने का था परन्तु कुछ सोच विचार कर उसने आगे बढ़ जाना निश्चय किया और जनवरी १९११ में ग्रेट आइस बैरियर पर पहुँच गया। यहाँ पहुँच कर उसने अपने साथियों को दो टोलियों में

विभाजित किया। एक टोली का काम यह नियत किया कि वह थोड़ी थोड़ी दूर पर गोदाम स्थापित करके उनमें खाने पीने की

ऐमन्डसन की पार्टी का एक सदस्य—कुत्ता गाड़ी के साथ

सामग्री एकत्रित करे। दूसरी टोली का काम जहाज़ में रह कर यात्रा-सम्बन्धी सामान तैयार करना नियत किया। कुत्ते गाड़ियों

में बैठ कर लम्बे लम्बे सफ़र कर के गोदाम स्थापित किये गये। जाड़ा बिताने के लिए रहने का स्थान और उसमें आराम की सारी वस्तुएँ एकत्रित करने में भी पूरी मेहनत लगी। टोली के आदमियों और साथ के सौ कुत्तों के खाने के लिए बहुत सी सील मारी गईं और उनका मांस नमक लगाकर सुखाया गया। हमें ऐमन्डसन् की पुस्तक पढ़ कर उस तैयारी और उपायशीलता पर आश्चर्य होता है जो उसने ध्रुव की यात्रा के पहले की थी। वह अपने और अपने साथियों के मनोरंजन और शिक्षा के लिए न केवल ग्रैमोफ़ोन बल्कि लगभग तीन हज़ार किताबों की लाइब्रेरी भी साथ ले गया था।

२२ अप्रैल सन् १९११ को जब जाड़ा काटने की सारी तैयारी हो चुकी थी, ऐमन्डसन् और उसके साथियों ने आख़िरी बार सूर्यास्त देखा। इसके-बाद अगस्त मास के अन्त तक सिवा हिम और तुषार के किसी को और कुछ दिखाई न दिया। सारे दिन यह लोग काम में लगे रहते और जब रात होती तो आकाश पर एक अद्भुत रंगीन चादर सी छा जाती जिसमें रंग बराबर बदलते रहते और जिसे देख कर सब के हृदय में एक अनोखा आनन्द उत्पन्न होता। कभी-कभी उनके साथ के कुत्ते अकारण ही एक साथ रो उठते और कुछ देर बाद यकायक ऐसे चुप हो जाते कि जैसे किसी ने उन्हें इशारा किया हो। जैसे जैसे दिन व्यतीत होते गये, सर्दी तेज़ होती गई और उनके काम में कमी होती गई। जब

२४ अगस्त को सूर्य फिर उदय हुआ तो सब लोग अच्छे तन्दुरुस्त थे, यहाँ तक कि उनके कुत्ते भी चैतन्य और कठिन यात्रा पर चलने के लिए उत्सुक थे। ऐमन्डसन् बड़ी सावधानी और होशियारी के साथ ऋतु-परिवर्तन पर अपनी दृष्टि जमाए रहा और जब उसे पूरा इतमीनान हो गया तो २० अक्तूबर को पाँच साथी और खाने-पीने के सामान की गाड़ियाँ खींचने के लिए बावन कुत्ते साथ लेकर चार महीने भ्रमण करने के इरादे से चल खड़ा हुआ।

मौसम बहुत ही अच्छा था और यह लोग लगभग तीस मील का सफ़र हर रोज़ खत्म कर लेते थे। जहाँ कहीं मौक़ा होता यह लोग खाने-पीने की वस्तुओं का गोदाम स्थापित करते जाते और अपने रास्ते पर जहाँ-तहाँ बर्फ़ के तूदे इसलिए बनाते जाते कि लौटते समय भटकना न पड़े। जिस जगह से इन लोगों ने प्रस्थान किया था वहाँ से ध्रुव केन्द्र तक एक हज़ार मील से अधिक फ़ासला था और बीच में बड़े-बड़े दुर्गम बर्फ़ के मैदान, घाटियाँ और पहाड़ थे। नवम्बर मास के मध्य में यह लोग ध्रुव के समीप की ऊँची चौरस भूमि के पास पहुँचे और उस पर चढ़ना आरंभ किया। अभी एक हज़ार फ़ीट की चढ़ाई भी न चढ़े थे कि अन्धा कर देने वाली बर्फ़ की प्रचंड आँधियों, कट-कशू की पीड़ा और अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ा। जहाँ कहीं इन लोगों को पिछले यात्रियों के बनाए हुए बर्फ़ के तूदे या और कोई चिन्ह मिलते तो इनको बड़ा ढाढ़स

होता और वे उन सब को बड़े प्रेम की दृष्टि से देखते। इन लोगों ने अपना अन्तिम गोदाम उस स्थान पर बनाया जहाँ तक कि शैक्लटन १९०९ में पहुँच चुका था। अब उनके सामने यात्रा का सबसे कठिन अन्तिम भाग था। इन लोगों के सौभाग्य से मौसम अच्छा था और यह आशा होती थी कि यदि सूर्य भगवान की कृपा बनी रही तो सर्दी असह्य न होगी। हृदय की प्रबल आशा उन्हें उत्साहित और उत्तेजित करती जाती थी

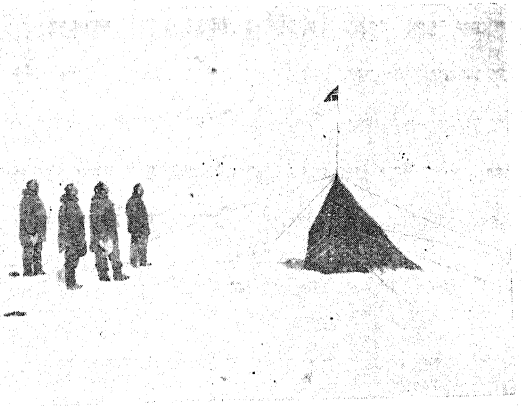

दक्षिण ध्रुव पर ऐमन्डसन की पार्टी—दिसम्बर १६-१७, १९११

और यह लोग बड़ी तेज़ी से क़दम बढ़ाये चले जाते थे। उनके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार बार-बार आता था—"क्या हम लोगों को यह सौभाग्य प्राप्त होगा कि हम सबसे पहले ध्रुव-केन्द्र पर पहुँच कर वहाँ अपने देश का झंडा गाड़ सकें?"

सन् १९११ के दिसम्बर महीने की चौदहवीं तारीख़ आ

गई। मौसम उस दिन भी अच्छा था और स्वच्छ नील आकाश उनके हृदयों को प्रफुल्लित और आह्लादित कर रहा था। प्रातःकाल उठ कर ऐमन्डसन् और उसके साथियों ने चलने की तैयारी कर दी। जलपान करने तक का किसी का मन न हुआ। उस अपूर्व निस्तब्धता को भंग करने के भय से कोई भी कुछ बात न करता था। क्या ऐमन्डसन्, क्या उसके साथी, प्रत्येक व्यक्ति इस संशय में डूबा हुआ था कि कहीं उनके पहुँचने से पहिले ध्रुव पर कोई और न पहुँच चुका हो। चुप-चाप सन्नाटे में सब लोग मारामार चले जाते थे और मन ही मन में एक-एक फ़र-लाँग और एक-एक मील को गिनते जाते थे। जैसे जैसे दोपहर ढलने लगा उनके दिल तेज़ी से धड़कने लगे और उनकी आँखों के सामने उनका भाग्य ध्रुव-केन्द्र पर बैठा हुआ दिखाई देने लगा। किसी ने घड़ी देखी तो तीन बजे थे। इतने में कोई चिल्ला उठा—"ध्रुव, ध्रुव!"

इन लोगों के सामने बर्फ़ का एक लम्बा-चौड़ा मैदान फैल रहा था! उस मैदान की निर्जनता और निस्तब्धता से यह साफ़ जान पड़ता था कि ऐमन्डसन् और उसके साथी वह सब से पहले मनुष्य थे जिन्होंने उस पर क़दम रखा था। जिस समय इन लोगों को यह पता चला कि वे उस स्थान पर पहुँच गये हैं जिस पर पहुँचने की अभिलाषा में सैकड़ों बड़े बड़े अन्वेषक अपनी जान तक जोखिम में डाल कर चक्कर लगा रहे थे तो उनको रोमांच होने लगा और वे सब सर झुका कर

सविनय ईश्वर को अपने सौभाग्य के लिए धन्यवाद देने लगे। ऐमन्डसन् ने लिखा है—"उस क्षण की गंभीरता और आह्लाद का वर्णन नहीं हो सकता जब बर्फ़ से कटे हुए पाँच हाथों ने नॉर्वे के झंडे को पकड़ कर हवा में हिलाया और यह कह कर दक्षिण ध्रुव पर उसे बर्फ़ में खड़ा किया कि 'एक उत्तरीय देश ने अपना प्रभाव दक्षिण के अन्तिम छोर पर पहुँचा दिया।'"

जब झंडा हवा में फहराने लगा तो इन विजयी वीरों ने एक दूसरे को बधाई दी और वहीं हँसी-ख़ुशी के साथ कुछ खा और सिगार जला कर अपनी सफलता का उत्सव मनाया। यह लोग तीन दिन ध्रुव पर रहे और ऐमन्डसन् ने बहुत से वैज्ञानिक निरीक्षण किए। चौथे दिन कुछ खाने की वस्तुएँ, पहनने के वस्त्र, कई उपयोगी नक़शे और लेख कैप्टेन स्कॉट के लिए वहाँ छोड़ कर चल खड़े हुए।

ऐमन्डसन् की सफलता की सूचना मार्च सन् १९१२ में देश-देशान्तर में पहुँच गयी। चारों ओर से बधाई और सम्मान के पत्र आने लगे। नार्वे पहुँच कर ऐमन्डसन् ने 'दक्षिण ध्रुव' नामक पुस्तक लिखी। यह प्रसिद्ध पुस्तक संसार के प्रायः सभी भाषाओं में प्राप्त है।

एक सुनसान द्वीप और उसके आदिम निवासी

प्राचीन काल से एक कहावत चली आती है कि ऐटलैंटिक महासागर में कोई बड़ा ही अद्‌भुत द्वीप था जो समुद्र की जल-तरंगों में डूब कर लुप्त हो गया। पैसिफ़िक महासागर के कुछ द्वीपों के संबंध में भी यह समझा जाता था कि वह किसी समय में बड़े बड़े भूमि-खंड थे जिनका अधिक भाग अब समुद्र में डूब गया है। कुछ लोग इस कहावत को समुद्र-यात्रियों की गढ़ी हुई कहानी समझते थे। किन्तु जब सन् १७२२ ई० में डच जाति के एक नाविक ने दक्षिण अमरीका से लगभग दो सहस्र मील की दूरी पर एक रहस्यमय द्वीप देखा और उसका वर्णन प्रकाशित किया तो लोगों के हृदय में इन कहावतों की वास्तविकता जानने की इच्छा उत्पन्न हुई।

यह छोटा सा द्वीप, समुद्र-पथों से अलग-थलग, पैसिफ़िक महासागर की भयानक लहरों के मध्य में स्थित है। द्वीप के चारों ओर सैकड़ों मील तक गहरी शांति और निस्तब्धता रहती है। उसके समुद्र-तट पर ऊँचे ऊँचे पहाड़ी टीले हैं जिनसे सागर की लहरें दिन-रात टकराती रहती हैं। अपनी पैसिफ़िक महासागर

की यात्रा में रॉगेवीन जब इस ओर हो कर निकला तो उसे समुद्र-तट की दशा देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। एक तो द्वीप का किनारा स्वयं समुद्र-तट से बहुत ऊँचा था और फिर उसके टीलों पर छोटी छोटी ऊँची दीवारों का एक लम्बा क्रम चला गया था। समुद्र की ओर से देखने पर यह छोटी छोटी दीवारें क़िले की दीवारों के समान सीधी खड़ी मालूम होती थीं। इन छोटी ऊँची दीवारों पर समुद्र की ओर पीठ किए हुए जहाँ तहाँ पत्थर की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ रक्खी थीं। इस अद्भुत दृश्य को देख कर रॉगेवीन को बड़ा आश्चर्य हुआ और द्वीप का रहस्य जानने के लिए वह कुछ साथियों के साथ जहाज़ से उतर कर एक ऊँचे टीले पर चढ़ गया। रॉगेवीन ने जिस दिन इस द्वीप को पहले पहल देखा था वह ईस्टर का दिन था। इसी कारण इस द्वीप का नाम 'ईस्टर द्वीप' रक्खा गया।

रॉगेवीन और उसके साथी देर तक द्वीप में इधर उधर घूमते रहे परन्तु वहाँ उन्हें एक भी मनुष्य दिखाई न पड़ा। दूर तक सन्नाटा छाया हुआ था। यह लोग कभी दीवारों को देखते थे, कभी मूर्तियों की भयानक आकृति पर विचार करते थे और क़दम क़दम पर उनका आश्चर्य बढ़ता जाता था। द्वीप की ओर दीवारों पर ढालू पुश्ते बँधे हुए थे और प्रत्येक दीवार के सामने एक चबूतरा था जिस पर एक मूर्ति रक्खी थी। कुछ चबूतरे टूट फूट गए थे और उनके ऊपर की मूर्तियाँ ज़मीन पर औंधे मुँह पड़ी थीं। यह सब दीवारें

और मूर्तियों के चबूतरे एक पंक्ति में बने थे। ध्यान देने से मालूम होता था कि किसी समय में उनके निकट पत्थर की सड़कें बनी थीं। यह लोग सड़कों के चिन्हों का अनुसरण करते हुए पूर्व दिशा की ओर चलते गए और उन्हें बराबर दीवारें और मूर्तियाँ मिलती गईं। लगभग ६ मील की दूरी पर उन्हें एक पत्थर की खान मिली जिसमें सौ-डेढ़-सौ मूर्तियाँ इधर उधर पड़ी थीं। कुछ मूर्तियाँ कहीं कहीं से टूट गई थीं और कुछ अधबनी दशा में थीं। खान के अंदर एक विशालकाय मूर्ति मिली जो लगभग सत्तर फ़ीट ऊँची और सब मूर्तियों से अच्छी भी थी। ऐसा मालूम होता था कि इस खान से किसी समय में तीन तरफ़ को सड़कें निकली थीं जो द्वीप की एक ओर से दूसरी ओर तक चली गई थीं। दीवारों का क्रम और मूर्तियों के चबूतरे इन्हीं सड़कों के किनारे किनारे बनते चले गये थे। यह स्पष्ट जान पड़ता था कि इन सब मूर्तियों का निर्माण इसी खान में हुआ था और इन्हीं सड़कों के द्वारा वह द्वीप के भिन्न भिन्न भागों में पहुँचाई गई थीं।

रॉगेवीन और उसके साथी ईस्टर द्वीप के निवासियों से भी मिले थे किन्तु उनका हाल मालूम न कर सके थे। उस समय द्वीप की जन-संख्या दो ढाई हज़ार से अधिक न थी। जब इस द्वीप की मूर्तियों का हाल मालूम हुआ तो लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। कई बार नाविकों ने द्वीप में जाकर खोज आरंभ की। बहुत से मिशनरी लोग भी पहुँचे लेकिन द्वीप-निवासियों

का सच्चा हाल न जान सके। लगभग दो शताब्दियों तक ईस्टर द्वीप और उसकी भयानक मूर्तियाँ पैसिफ़िक महासागर के रहस्य बने रहे। उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ विद्वान यह भली भाँति समझते थे कि ईस्टर द्वीप के आदिम निवासियों का हाल प्राचीन सभ्यता पर प्रकाश डालेगा किंतु फिर भी किसी प्रकार का विशेष हाल मालूम न हो सका।

अंत में, १६१३ ई० में, इंगलैंड के एक प्रसिद्ध विद्वान स्कोर्सबी रटलेज ने एक नाव तैयार कराई और अपनी पत्नी के साथ ईस्टर द्वीप का ठीक ठीक हाल जानने की इच्छा से चल पड़े। लगभग एक वर्ष की यात्रा के बाद ये द्वीप में पहुँचे। कई वर्ष तक यहां रह कर उन्होंने बहुत सी बातों की खोज की जो बड़ी ही विचित्र और मनोहर हैं। उनका कहना है कि द्वीप के आदिम निवासी जँगली अवस्था में रहते हैं। उनकी जनसंख्या बड़ी शीघ्रता से घटती जाती है। इस समय उनकी संख्या एक सौ से अधिक नहीं। द्वीप में ताज़े पानी की नदियाँ या झरने न होने के कारण वह कभी भी अच्छी तरह आबाद नहीं किया जा सकता। पहले इन लोगों के दस समुदाय थे जिनमें सदैव से पारस्परिक द्वेष और विरोध रहा करता था। इन लोगों के पास लकड़ी की कुछ पटरियाँ थीं जिन पर कुछ लेख खुदे हुए थे जो अब नहीं मिलते। इन खुदे हुए लेखों के कुछ सड़े-गले टुकड़े योरप और अमरीका के अजायब घरों में रक्खे हैं लेकिन वह पढ़े नहीं जा सकते। मिस्टर रटलेज के द्वीप में आने से बीस-

पचीस वर्ष पहले तक यह पटरियाँ पाई जाती थीं और उन पर लिखे हुए लेखों को पढ़ने वाले भी जीवित थे। इन लेखों की भाषा जानने वाला आख़िरी आदमी उनके द्वीप में प्रवेश करने के दो-तीन दिन बाद मर गया और उस समय तक जो हाल ईस्टर के आदिम निवासियों की ज़बानी मालूम हुए वह बड़े आश्चर्यजनक हैं।

कहा जाता है कि द्वीप के पश्चिम ओर एक ऊँचा ज्वालामुखी पर्वत था जिसकी चोटी पर एक अद्भुत जाति की चिड़िया अंडा दिया करती थी। इस पक्षी को ये लोग अपनी भाषा में 'मनू तारा' कहा करते थे और उसके अंडे की पूजा की जाती थी। उसके अंडे की सभी लोगों को खोज रहती थी और जिस किसी को वह मिल जाता था वह आदमी देवता समझा जाता था। जिस पहाड़ पर चिड़िया अंडा देती थी उस पर पचास साठ घर बनाये गये थे जिनमें कुछ लोग अंडा देने के मौसम में आकर रहने लगते थे। यहाँ एक ऐसी औरत भी रहा करती थी जो अपनी दिव्य-दृष्टि से उस मनुष्य को पहले से देखकर बता देती थी जिसे अंडा मिलने वाला होता था। उस आदमी के नौकर पहाड़ की चोटी पर अंडे की खोज में घूमा करते थे और जब अंडा मिल जाता था तो वे अपने मालिक को सूचना देते थे। मालिक स्वयं जाकर अंडा उठाता था और बड़ी धूम-धाम से लौटता था। पहाड़ पर आग जलाकर द्वीप के निवासियों को अंडा मिल जाने की सूचना दी जाती थी।

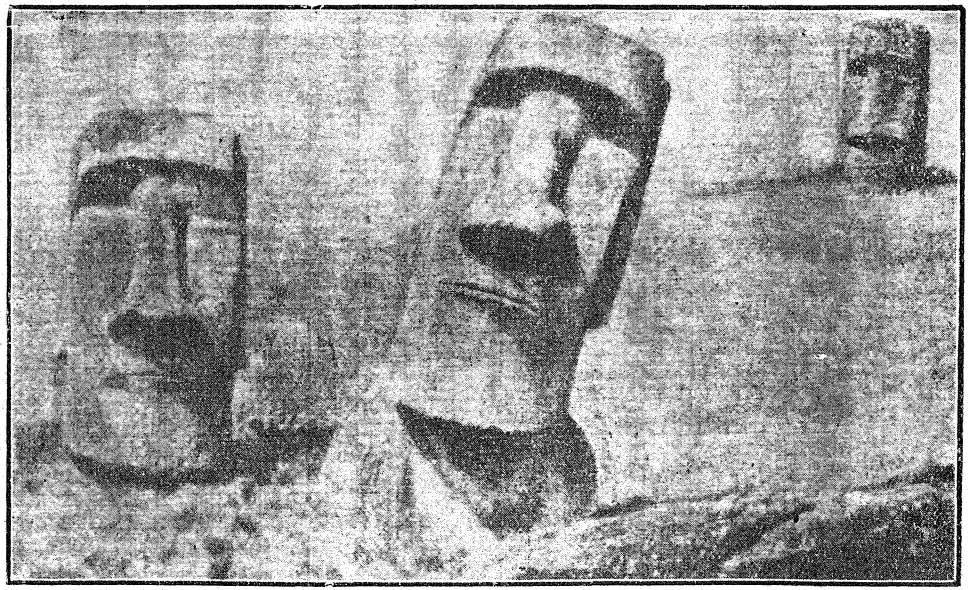

ईस्टर द्वीप—कुछ मूर्तियाँ कहीं कहीं से टूट गई थीं और कुछ अधबनी दशा में थीं

अंडा पाने वाले के मकान से, जिसे ये लोग 'ओरंगो' कहा करते थे, एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला जाता था जिसके साथ वह व्यक्ति अंडे को सिर पर रक्खे नाचता-कूदता लगभग १२ मील की यात्रा पूरी करता था। यह जुलूस द्वीप की परिक्रमा करता हुआ उस स्थान पर पहुँचता था जहाँ बड़ी मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। वहाँ एक बड़ी दावत होती थी। अंडा पाने वाला भाग्य-शाली यहाँ एक निश्चित मकान में रखा जाता था और उसका चित्र एक चट्टान में खोद कर बनाया जाता था। उस चित्र में एक आदमी के सिर के स्थान में मनूतारा का सिर बनाया जाता था।

मिस्टर रटलेज ने ऐसे मनुष्यरूपी देवताओं के सौ-डेढ़-सौ चित्र देखे। उनका विचार है कि कदाचित् ज्वालामुखी पर्वत पर जो मूर्तियाँ खड़ी हैं उनका भी सम्बन्ध अंडा पाने वाले व्यक्तियों से हो। द्वीप के इसी भाग में ये लोग गाड़े भी जाते थे। सम्भव है कि समुद्र-तट की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ भी, इस कारण से कि पूजा हर साल होती थी, इसी पूजा से कुछ संबंध रखती हों। मूर्ति-निर्माण का कार्य भी बराबर चलता रहता था। द्वीप के सारे निवासी देवता बनने की इच्छा रखते थे और इस जाति के कुल सम्प्रदाय इसी गौरव के प्राप्त करने के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे।

इन लोगों का एक राजा होता था जो पटरियों पर खुदे हुए लेखों के रहस्य को समझता था। जो लोग इस लिपि को जानते

थे वे अपनी खोदी हुई पटरियाँ राजा को भेंट किया करते थे। जो पटरियाँ ठीक हुआ करती थीं वह राजा की आज्ञा से सुरक्षित रक्खी जाती थीं और बाक़ी नष्ट कर दी जाती थीं। इस जाति का अंतिम राजा सन् १८६३ ई० में मारा गया और यही साल इस द्वीप के निवासियों की तबाही का भी है। इसी वर्ष दक्षिणी अमरीका के पिरू देश के उन व्यापारियों ने जो दासों का क्रय-विक्रय किया करते थे, इस द्वीप पर आक्रमण कर यहाँ के निवासियों में से कुछ को मार डाला और बहुतों को क़ैद कर ले गये और उन्हें दासों की भाँति अन्य देशों में बेंच डाला। द्वीप के वह लोग जिन्हें रागेवीन ने देखा था उन्हीं आदिम निवासियों की संतान थे जो किसी प्रकार अपनी जान बचा कर द्वीप में बाक़ी रह गये थे।

यह अभी तक मालूम न हो सका है कि यह जाति किस देश से आकर यहाँ बसी थी। सम्भव है ये लोग इसी द्वीप के असली निवासी हों और यहीं इन लोगों ने अपनी सभ्यता और कला-कौशल का आविष्कार किया हो। कुछ विद्वानों का मत है कि ईस्टर द्वीप की सभ्यता मेक्सिको की प्राचीन सभ्यता का एक रूप है। यदि यह अनुमान ठीक है तो कुछ आश्चर्य नहीं कि एशिया की प्राचीन सभ्यता का प्रभाव इस द्वीप पर भी उसी काल में पड़ा हो जब पूर्वीय द्वीप समूह में उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किए और दूर दूर तक उनकी सभ्यता जा पहुँची। सत्य चाहे जो हो, किन्तु ईस्टर द्वीप का संसार से परे एक

सुनसान समुद्र के बीच में होना और उसमें असंख्य पत्थर की मूर्तियों का पाया जाना देखने वाले के संमुख एक अद्भुत और कौतूहलपूर्ण दृश्य उपस्थित करता है।

पैसिफ़िक महासागर के अग्निद्वीप और उनकी खोज

एशिया और अमेरिका के महाद्वीपों से हज़ारों मील दूर पैसिफ़िक महासागर के बीचोबीच एक भयंकर अग्निकुंड है। किसी समय में इस स्थान पर पृथ्वी के अग्निकोष्ठ की प्रचंड ज्वाला धरातल फोड़ कर ऊपर आ निकली थी। जो दरारें और सुरंगें समुद्र की लहरों के तीन मील नीचे धरातल में उस समय बन गई थीं वह फिर बंद नहीं हुईं। जब कभी किसी कारण पृथ्वी के भीतर की आग भड़क उठती तो इन्हीं दरारों और सुरंगों में से आग के फ़व्वारे निकलने लगते। कभी-कभी अग्नि के विशेष वेग से उन सुरंगों में से पिघला हुआ लावा उबल पड़ता और जल के स्पर्श से ठंडा होकर उनके मुँह पर जम जाता। नहीं मालूम कै हज़ार या कै लाख बार इसी तरह पृथ्वी के अग्निकोष्ठ से निकल निकल कर लावा सुरंगों के मुँह के चारों ओर जमा होगा जब कहीं उनके मुँह ऊँचे होकर समुद्र की लहरों के ऊपर निकले होंगे। इन्हीं भयंकर घटनाओं ने पैसिफ़िक महासागर के उन सब छोटे-बड़े द्वीपों को बनाया है जिनमें से एक के मध्य में वह ज्वालामुखी सुरंग है जो अतीतकाल के

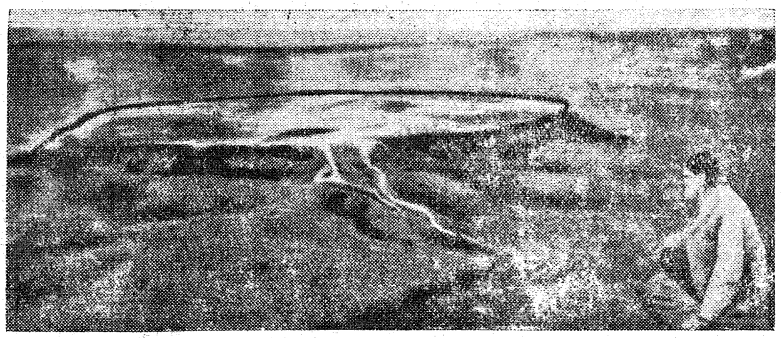

जलते हुए लावा की झील जिसमें से निकल निकल कर अग्निधारा
हाज़ारों फ़ीट नीचे तक बह जाती है

यात्रा और जीवट

की

साहस भरी कहानियाँ

एवरेस्ट के विजेता तेनसिंह और हिलेरी पर्वतारोहण के उपरान्त एकत्र आनन्द मना रहे हैं।

६१०.८
दश/या

रामलाल सूरी एण्ड सन्ज़
दिल्ली—अम्बाला

यात्रा और जीवट

की

साहस भरी कहानियाँ

…रेस्ट के विजेता तेनसिंह और हिलेरी पर्वतारोहण …के उपरान्त एकत्र आनन्द मना रहे हैं।

६१०.८
दृा|या

रामलाल सूरी एण्ड सन्ज़

दिल्ली—अम्बाला

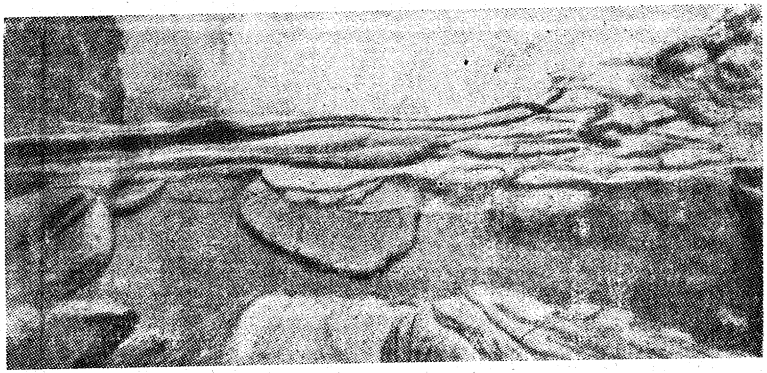

लावा से बनी हुई नई भूमि जिस पर जलता हुआ माद्दा निकल निकल
कर जमता जाता है

समान आज भी ऊँची होती चली जाती है और जिसमें से लावा की रक्तवर्ण जिह्वा निकल निकल कर आज भी उसी तरह अपनी संतप्त फुंकार से समुद्र की लहरों को झुलसती रहती है।

जिस द्वीप में प्रकृति ने यह भयंकर अग्निकुंड बनाया है वह सैन्डविच समूह का सबसे बड़ा हवाई नामक द्वीप है। इस अद्भुत समूह के सारे द्वीप पृथ्वी के अग्निकोष्ठ से निकले हुए लावा से बने हैं। लावा से बनी हुई भूमि के उपजाऊ होने के कारण यह सब द्वीप खूब हरे-भरे रहते हैं। उन भागों को छोड़ कर जो पहाड़ियों से घिरे हैं कोई भी ऐसी जगह नहीं जहाँ तरह तरह के फल और नाज न पैदा होते हों। फूलों की वहाँ इतनी बहुतायत है कि मानों प्रकृति ने दिल खोल कर होली खेली हो। जिधर देखिए मीलों तक रंग ही रंग दिखाई देता है। क्या मैदान, क्या पहाड़, यहाँ तक कि वह जगहें भी जहाँ किसी समय में जलते हुए लावा की नदियाँ बहती थीं, सब्ज़े और रंगारंग फूलों से सुशोभित हैं। यहाँ न तो अधिक सर्दी पड़ती है न गर्मी, दिन-रात वसन्त-ऋतु की सी सुरिभत समीर बहा करती है। इन्हीं सब कारणों से यह द्वीप-समूह पैसिफ़िक महा-सागर का स्वर्ग कहलाता है। इन द्वीपों की भौगोलिक स्थिति से ऐसा मालूम होता है कि जैसे प्रकृति ने अपने स्वतंत्र और निमग्न विचरने के लिए यह एकांत स्थान बनाया था जिसे मनुष्य ने अपने प्रपंच और विग्रह से भ्रष्ट कर डाला है। यह द्वीप-समूह एशिया और ऑस्ट्रेलिया के भूभागों से पाँच हज़ार

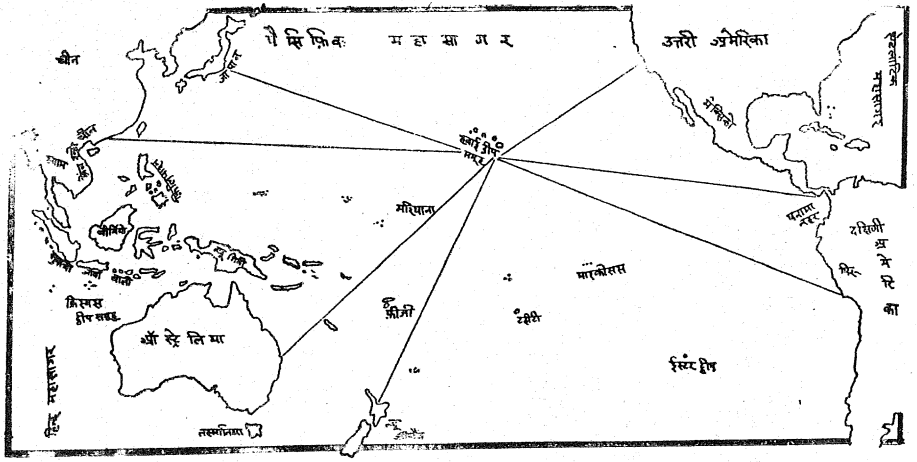

हवाई द्वीप-समूह एक बड़े काल तक सभ्य संसार से अलग-अलग महासागर की लहरों में छिपे पड़े रहे

मील दूर है। अमेरिका का सैनफ्रांसिस्को नामक बन्दरगाह, जो इन द्वीपों से निकट कहा जा सकता है, वह भी दो हज़ार मील दूर है। इन लम्बे लम्बे फ़ासलों के कारण यह द्वीप एक बड़े काल तक सभ्य संसार से अलग-थलग महासागर की लहरों में छिपे पड़े रहे और किसी का ध्यान इनकी ओर न गया।

सुगंधित वस्तुओं और लौंग, जायफल, जावित्री और दूसरे मसालों की खोज में जब योरोप की जातियों ने पैसिफ़िक महासागर के चक्कर लगाने आरंभ किए तो पुर्तगाल और स्पेन के साहसी नाविकों को सब से अच्छी सफलता प्राप्त हुई और वह लोग जिलालो द्वीप तक जा पहुँचे। सन् १५१३ में नूनेज़ बेल्बोआ नामक स्पेन के एक नाविक ने दक्षिण अमेरिका की एक पहाड़ी पर चढ़ कर पैसिफ़िक महासागर को देखा और अपने देश के नाविकों को ऐटलांटिक महासागर पार कर के पश्चिम की ओर से हिन्दुस्तान पहुँचने की चेष्टा करने को उत्तेजित किया।

सन् १५१९ के सितम्बर मास में मैजिलन नामक स्पेन के एक प्रसिद्ध नाविक ने इस कठिन समुद्र-यात्रा पर बड़े उत्साह और समारोह से प्रस्थान किया। मैजिलन के जहाज़ों में स्पेन के नाविकों के अलावा इटली फ्रांस, हालैंड, इंगलैंड और पुर्तगाल के भी ऐसे साहसी लोग थे जिन्हें समुद्र-यात्रा की कठिनाइयों का अच्छा अनुभव था। लोम्बार्ड जाति का अन्टोनियो पिगाफ़ेटा नामक एक भूगोल विशेषज्ञ भी मैजिलन के साथ था जो अपनी डायरी में यात्रा के सारे अनुभवों को लिखता जाता था।

लगभग एक साल तक दक्षिण अमेरिका में भ्रमण करने के बाद यह लोग १५२० के नवम्बर मास में पैसिफ़िक महासागर में पहुँचे थे। मैजिलन के नाविक जहाज़ों के ठहरने की भूमि खोजते हुए लगभग बारह हज़ार मील का फ़ासला तै करके भूखे-प्यासे किसी तरह १०५ वें दिन सूर्य्योदय के समय मेरियाना द्वीप-समूह के एक टापू के किनारे पहुँचे। पिगाफ़ेटा के लिखने से जान पड़ता है कि इस खोज में यह लोग सैन्डविच द्वीप-समूह के दक्षिण से गुज़रे थे। जिन लाल-पीली ऊँची पहाड़ियों का उसने अपनी डायरी में उल्लेख किया है वह वास्तव में इसी समूह के वह छोटे द्वीप थे जिनका अधिकांश भाग ऊसर पहाड़ियों से घिरा हुआ है और जो समूह के बड़े द्वीपों से दूर होने के कारण बिल्कुल निर्जन और सुनसान पड़े हैं। मेरियाना द्वीप-समूह से चलकर मैजिलन मार्च सन् १५२१ में फ़िलीपाइन द्वीप-समूह के सामूर टापू में जा पहुँचा और वहाँ वह ईसाई धर्म फैलाने और द्वीपों के राजाओं को आपस में लड़वाकर अपना अधिकार जमाने के कामों में कुछ इस तरह फँस गया, और अन्त में मार भी डाला गया, कि उसके जहाज़ फिर हवाई की ओर न आ सके। मैजिलन के बचे-खुचे साथी बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहते हुए किसी तरह इस यात्रा से स्पेन लौट गए और इस प्रकार सैन्ड-विच द्वीप योरप के व्यग्र नेत्रों से सुरक्षित महासागर की लहरों में कुछ वर्ष और छिपे पड़े रहे।

स्पेन के निडर नाविकों ने पाँच वर्ष के बाद पैसिफ़िक महा-

सागर की खोज फिर आरम्भ की। सन् १५२८ में मेक्सिको से फ़िलिपाइन द्वीपों की ओर दो जहाज़ भेजे गए। यह दोनों जहाज़ एक भयंकर आँधी में फँस कर अपने रास्ते से दूर बह गए और सैन्डविच समूह के किसी द्वीप के किनारे चट्टानों से टकरा कर चूर-चूर हो गए। इन जहाज़ों के बहुत से नाविक तो समुद्र में डूब कर मर गए और जो थोड़े से किसी तरह जीवित रह गए थे वह द्वीप में पहुँचे और स्पेन लौट जाने का कोई सहारा न देखकर धीरे धीरे द्वीप के आदिम निवासियों से मिल-जुल कर वहीं रहने लगे। लगभग चालीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर दैव-योग से स्पेन के कुछ जहाज़ फिर इस द्वीप के किनारे आ लगे। इस द्वीप के निवासियों से अपनी भाषा के कुछ बिगड़े हुए शब्द सुन कर नाविकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत छान-बीन करने के बाद इस दुर्घटना का हाल खुला तो उनको स्पेन ले जाने का प्रबन्ध किया जाने लगा किन्तु उनमें से कोई भी वापस जाने को तैयार न हुआ। द्वीप के आदिम निवासियों से वह लोग चालीस वर्ष के समय में ऐसे हिल-मिल गए थे, और आपस में शादी-ब्याह हो जाने से उन सब में इतना प्रेम हो गया था, कि वह इन्हीं द्वीपों को अपनी मातृभूमि समझने लगे थे।

इस समय के बाद स्पेन के जहाज़ कभी कभी भूले-भटके इधर से आ निकलते और कुछ ठहर कर खाने-पीने की वस्तुएँ ले कर चले जाते। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस और इंगलैंड के नाविकों ने भी पैसिफ़िक महासागर की खोज शुरू की और जैसे-

जैसे इस महासागर की माया का मोह इन वाणिज्यप्रिय जातियों को होता गया स्पेन और पुर्तगाल से इनकी लड़ाई छिड़ती गई। कभी माल से लदे हुए स्पेन के जहाज़ों पर यह लोग छापा मारते, कभी स्पेन के हथियाये हुए द्वीपों पर चढ़ाई करके वहाँ अपना अधिकार जमा लेते। इस लूट-मार में डच जाति के नाविक भी सम्मिलित थे। साम, दाम, दंड, भेद, सभी उपायों का दिल खोल कर इन लोगों ने प्रयोग किया। किसी अवसर पर द्वीपों के छोटे छोटे राजाओं को लड़वा कर अपना अधिकार जमाया, कभी स्वयं उनसे युद्ध करके उन्हें मार-काट डाला। अपने अधिकार को दृढ़ करने के विचार से द्वीपों के आदिम निवासियों के प्राचीन विचारों पर अनेक प्रकार के प्रभाव डालकर उनकी सभ्यता को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और अन्त में अपने शासन की नीव पाताल तक पहुँचाने के लिए ईसाई मत का द्वार खोलकर उन्हें ज़बरदस्ती स्वर्ग में भेज दिया। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक प्रायः सभी योरोपीय जातियों के नाविक पैसिफ़िक महासागर को मथते रहे परन्तु भाग्यवश सैन्डविच समूह के द्वीप उनकी कृपा-दृष्टि से ओझल पड़े रहे। यदि कुछ लोग महासागर के मध्य भाग तक कभी पहुँचे भी तो इन द्वीपों में अपने योग्य वाणिज्य की कोई सामग्री न पाकर यहाँ उन्होंने अपना डेरा नहीं डाला। बहुत दिन तक इन नाविकों के वृतान्तों द्वारा योरोप के लोग पैसिफ़िक महासागर के इस मध्य भाग को एक ऐसा

भयंकर अग्निकुंड समझते रहे जहाँ मनुष्य का निर्वाह होना असम्भव हो।

सन् १७६८ से इंगलैंड के जगत विख्यात नाविक, जेम्स कुक, की स्मरणीय समुद्र-यात्राएँ आरम्भ हुईं। यह नाविक स्कॉटलैन्ड के एक निर्धन मज़दूर का लड़का था जो समुद्र-तट की दूकानों में छोटा-मोटा काम करके किसी प्रकार अपना पेट पाला करता था। मछुओं और जहाज़ों में यात्रा करने वाले लोगों से ही उसे काम पड़ता था। लड़कपन ही से उसे समुद्र-यात्रा की कठिनाइयों और उनकी दूर करने के उपायों का वृतान्त सुनने का शौक़ था। जब कभी उसे कुछ समय मिलता और वह किसी यात्री को पकड़ पाता तो उससे समुद्र-यात्रा के अनुभवों को कुरेद कुरेद कर पूछता और उस भविष्य काल के स्वप्न देखता जब वह स्वयं समुद्र पर अपना जीवन व्यतीत कर सके। जब वह सोलह वर्ष का हुआ तो एक दिन दूकान की गोलक में से एक शिलिंग चुरा कर वह भाग निकला और वहाँ से कुछ दूर के बन्दरगाह में जाकर एक जहाज़ पर नौकरी कर ली। लड़का इतना होशियार और मेहनती था कि साल ही भर में उसे तरक्क़ी मिल गई। जहाज़ के मालिक ने उसके पढ़ने-लिखने का भी प्रबन्ध कर दिया। चार वर्ष की पढ़ाई से उसके जौहर खुल गए और वह बड़ा होनहार नाविक समझा जाने लगा। गणित-विद्या और भूगोल में उसने सराहने योग्य उन्नति की और विशेष चमत्कार दिखलाया। सन् १७५२ में जब कि

उसे नौकरी करते केवल आठ वर्ष हुए थे और उसकी आयु केवल चौबीस वर्ष की थी कोयला ढोने वाले एक जहाज़ पर वह नायब नियुक्त हुआ और उसकी कार्य्य कुशलता की प्रशंसा दूर दूर तक होने लगी। जब इंगलैंड और फ्रांस में युद्ध आरम्भ हुआ तो जेम्स कुक को सरकारी नौकरी मिली। सन् १७५५ में ईग्ल नाम के जहाज़ में वह कप्तान का मेट बनाया गया और अमेरिका के समीप के समुद्र और द्वीपों की खोज के काम में लगा दिया गया। यहाँ कुक ने बड़ी बहादुरी और सहनशीलता दिखाई और अच्छा नाम पैदा किया।

सन् १७६२ में इंगलैन्ड लौट कर जेम्स कुक ने रायल सोसायटी के सामने अपने अनुभवों की एक रिपोर्ट पेश की जिसमें न्यूफ़ाउन्डलैन्ड के समुद्र-तट के बड़े सुन्दर और ठीक नक़शे दिये और बहुत सी भौगोलिक नई नई बातें लिखीं। इस रिपोर्ट में एक सूर्यग्रहण का भी बयान था जो उसने उत्तरी अमेरिका के किसी द्वीप से देखा था और जिसे उसने वैज्ञानिकों की भाँति नपे-तुले ठीक शब्दों में लिखा था। इस समय रायल सोसायटी के सामने उस ग्रहण को देखने का प्रश्न उपस्थित था जो शुक्र नक्षत्र के पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाने से अगले वर्ष लगने वाला था। सौर-विज्ञान-वेत्ताओं का मत था कि ग्रहण का सर्व-ग्रास दक्षिण पैसिफ़िक के टहीटी नामक द्वीप से दिखाई देगा। उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इस यात्रा की कठिनाइयों और ख़तरों का सामना करके

टहीटी पहुँच सके और सूर्यग्रहण के अवसर पर उन सब बातों का निरीक्षण कर सके जो वह ग्रहण के संबंध में जानना चाहते थे। जेम्स कुक की रिपोर्ट से यह सिद्ध हो गया कि इस कठिन काम को वह अच्छी तरह पूरा कर सकता था। रायल सुसायटी ने जेम्स कुक की यात्रा के सारे सामान और ख़र्चे का प्रबन्ध कर दिया और वह सन् १७६८ में लन्डन से 'ऐन्डेवर' नामक जहाज़ पर दक्षिण पैसिफ़िक भेज दिया गया।

इस यात्रा में सर जोज़ेफ़ बैंक्स नामक एक धनाढ्य विज्ञान-वेत्ता भी उसके साथ गया था और अपनी डायरी में यात्रा के सारे अनुभवों को लिखता जाता था। कुक की इस यात्रा पर जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं उन सब की सामग्री सर जोज़ेफ़ बैंक्स की डायरी में से ली गई। कुक ने उस कार्य को जो उसे सौंपा गया था बड़ी कुशलता से समाप्त किया जिस कारण उसका नाम सारे वैज्ञानिक संसार में विख्यात हो गया। साथ ही उसने टहीटी, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैन्ड पर इंगलैन्ड का झन्डा भी फहरा दिया। इस यात्रा में उसने बहुत से ऐसे द्वीपों का पता लगाया जहाँ उस समय तक कोई भी योरोप का नाविक नहीं पहुँचा था।

जुलाई सन् १७७१ में लन्डन लौट आने पर जेम्स कुक उस बड़े जहाज़ का कमान्डर बनाया गया जो दक्षिण पैसिफ़िक की खोज के लिए विशेष प्रबन्ध से तैयार किया गया था और जिसका नाम 'रिज़ोल्यूशन' रक्खा गया था। कुछ महीने इंगलैन्ड में रह कर उसने यात्रा का सारा समान इकट्ठा किया और कई

विज्ञान-वेत्ताओं और एक अच्छा चित्रकार को साथ लेकर वह फिर दक्षिण पैसिफ़िक की ओर चल दिया।

इस बार जेम्स कुक का इरादा दक्षिण ध्रुव तक जाने का था। लगभग ग्यारह हज़ार मील जाने के बाद एक सौ सत्रहवें दिन (२० मार्च सन् १७७३ को) पहले पहल उसे भूमि दिखाई दी जहाँ उसने जहाज़ रोक दिया। यह भूमि न्यूज़ीलैन्ड के दक्षिण एक द्वीप की थी। यहाँ से यह लोग टहीटी होते हुए कई एक छोटे छोटे द्वीपों में पहुँचे जिनकी किसी को ख़बर भी न थी। रास्ते में कई द्वीपों पर कुक ने उन चिड़ियों और पशुओं को छोड़ा जिन्हें वह उन जगहों में सचारने के लिए अपने साथ लाया था। नवम्बर सन् १७७३ में यह लोग फिर न्यूज़ीलैंड होते हुए दक्षिण ध्रुव के समीप के भूखंड की खोज में निकले जिसका वर्णन उन्होंने फ़्रांस देश के नाविकों की लिखी हुई पुस्तकों में पढ़ा था। कई महीनों की खोज के बाद जब कुक को यह निश्चय हो गया कि समुद्र के उस भाग में कोई ऐसा भूखंड नहीं जो बसाया जा सके तो वह उत्तर की ओर मुड़ा और १३ मार्च सन् १७७४ को ईस्टर द्वीप पहुँचा जहाँ इन लोगों ने उन अद्भुत विशाल काय मूर्तियों को देखा जिनका हाल डच जाति के नाविक रॉगवीन ने लिखा था। पैसिफ़िक महासागर के इस भाग में आठ महीने चक्कर लगाने के बाद सन् १७७५ के आरम्भ में कुक और उसके साथी इंगलैंड लौट गये।

जो कुछ इन लोगों ने इस यात्रा में देखा और किया था

उसका हाल जानकर सब लोगों को बड़ा संतोष हुआ और सामान ठीक करने के बाद सन् १७७६ की ग्रीष्म ऋतु में तीसरी बार उसी 'रिज़ोल्यूशन' नामक जहाज़ में फिर पैसिफ़िक महासागर के अन्वेषण के लिए जेम्स कुक को भेजा गया। इस बार भी कई विज्ञान-वेत्ता उसके साथ थे। अफ़रीका महाद्वीप के दक्षिण से घूम कर न्यूज़ीलैंड, टहीटी, और मध्य पैसिफ़िक होते हुए उत्तरी अमेरिका के किनारे पर पहुँचना निश्चय हुआ था।

सन् १७७७ की २४ जनवरी को यह लोग लगभग सात मास समुद्र पर व्यतीत करके तस्मानिया द्वीप में पहुँचे। रास्ते में उन द्वीपों को भी ध्यान से देखा जो किसी समय उस विस्तृत भूखंड के अंग थे जो ऑस्ट्रेलिया को दक्षिण अमेरिका से मिलाता था और जो अब समुद्र की लहरों के नीचे चला गया है। तस्मानिया से चल कर यह लोग न्यूज़ीलैंड पहुँचे और कई महीने तक टांगो द्वीपों में ठहर कर उत्तर की ओर चल दिये। दिसम्बर मास में इन्हें एक नई भूमि मिली जिसका नाम क्रिसमस द्वीप रक्खा गया। अब इन्हें कई हज़ार मील तक सिवा समुद्र की ऊँची लहरों के और कुछ दिखाई न दिया। कहीं कहीं इन्हें एक अद्भुत दृश्य देखने में आया। समुद्र के ऊपर से जल का पचास-साठ गज़ मोटा स्तम्भ उठ कर सीधा आकाश में चला जाता और बादलों में लोप हो जाता। पहले तो कुक के साथी यह समझे कि बादलों में से मेंह की मोटी मोटी धारें गिर रही हैं और वायु के वेग से आपस में मिल जाने के कारण दूर से

स्तम्भ के आकार की दिखाई देती हैं; परन्तु इन लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही जब आगे चल कर एक स्थान पर इन्होंने अपने जहाज़ के निकट ही समुद्र में से एक जल-स्तम्भ उठते देखा। यह स्तम्भ अभी सौ फ़ीट भी ऊपर न उठा था कि वह एक बड़े जल-पक्षी से टकराया और पक्षी फड़फड़ाता हुआ उसमें फँस कर कभी ऊपर कभी नीचे होता हुआ आकाश में लोप हो गया। इस दृश्य से भयभीत होकर यह लोग मारामार उत्तर की ओर चलते चले गए। इन लोगों को प्रति क्षण ऐसा अनुभव होता कि जैसे इनके जहाज़ के नीचे से जल-स्तम्भ उठ रहा हो और जहाज़ के टुकड़े टुकड़े हुए जा रहे हों। जेम्स कुक के एक साथी ने अपनी डायरी में लिखा है कि जब तक जहाज़ उस स्थान से लगभग बीस मील दूर नहीं निकल गया किसी को खाने-पीने तक का होश न हुआ।

इस स्थान से यह लोग सीधे उत्तर की ओर बढ़े परन्तु कहीं भी भूमि न मिली। २२ जनवरी सन् १७७८ को संध्या समय कुक ने जहाज़ के सामने उत्तर पश्चिम की ओर आकाश में उठती हुई एक अद्भुत प्रकार की लालिमा देखी। कुछ दूर बढ़ने पर आकाश का रंग और भी गहरा लाल होने लगा और पौ फटने के कुछ देर पहले एक ऊँचे पहाड़ की चोटी पर रह रह कर बिजली सी चमकने लगी। सुबह होते होते इन लोगों को एक छोटा द्वीप दिखाई देने लगा और वह बिजली चमकाने वाला पहाड़ छिप गया। जहाज़ ठहरा कर कुछ लोग एक छोटी नाव में बैठ कर किनारे गए तो

प्राकृतिक शोभा देख उनकी आँखें खुल गईं। मीलों तक हरे हरे दूब से लहलहाते मैदान चले गए थे जिनके बीच में कल्गी लगाए हुए खजूर के पेड़ों की पंक्तियाँ खड़ी थीं। वृक्षों के तनों पर रंग रंग के फूलों से लदी हुई लताएँ चढ़ी थीं। कहीं कहीं बारीक पत्तियों के गठे हुए ऊँचे पेड़ हवा से हिल हिल कर सन्नाटे को और भी निस्तब्ध कर रहे थे। यह लोग बहुत दूर तक चले गए परन्तु कोई आदमी दिखाई न दिया। मैदान एक स्थान से ऊँचा होने लगा और अन्त में एक टीले पर जाकर हरियाली और पेड़-पौदे सब ग़ायब हो गए। यहाँ से वह ज्वालामुखी पहाड़ दिखाई पड़ने लगा जिसकी लपटों ने दूर दूर तक आकाश को लाल रंग दिया था। जिस भूमि पर लोग अब चल रहे थे वह इसी ज्वालामुखी पहाड़ से निकले हुए लावा की बनी थी। साफ़ मालूम होता था कि जलते हुए माद्दे की मोटी तह कहाँ तक बह कर चट्टान बन गई थी। इस ऊँची-नीची भूमि पर न घास थी, न कोई पेड़। कहीं कहीं चट्टानें दस-बारह फ़ीट ऊँची दीवार की तरह इनकी राह रोक कर खड़ी थीं जिस कारण कई मील का चक्कर लगा कर यह लोग एक बड़ी झील के किनारे पर पहुँचे जिसमें से धुएँ के बादल उठ रहे थे। यहाँ भी इन लोगों को कोई आदमी दिखाई न पड़ा। कुछ देर घूम फिर कर यह लोग जहाज़ पर लौट आए और कई दिन ठहरने के बाद एक रात्रि को लंगर उठा कर इस द्वीप से उत्तर अमेरिका को चल दिये। चलते समय कैप्टेन कुक ने इस द्वीप का नामकरण

संस्कार किया और जहाज़ी शासनविभाग के सब से बड़े लार्ड के नाम पर उसे सैन्डविच द्वीप कह कर पुकारा। इसी नाम से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक यह द्वीप विख्यात रहा और फिर हवाई के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

सैन्डविच द्वीप से चल कर कैप्टेन कुक बहरिंग की खाड़ी में पहुँचा। उसका इरादा था कि इस खाड़ी से उत्तर-पश्चिम दिशा के उस रास्ते से निकल कर ऐटलान्टिक महासागर में प्रवेश करे जिसकी खोज में योरोप के बड़े बड़े नाविक बहुत दिनों से अपनी जानें होम रहे थे और जिसे ढूँढ़ निकालने के लिए इंगलैंड की सरकार ने इस बार उसे भेजा था। परन्तु सर्दी का मौसम था और बहरिंग के उत्तर के समुद्र के बहते हुए बरफ़ के पहाड़ों के कारण पार करना असम्भव हो गया था। लाचार होकर कुक को पीछे लौटना पड़ा। उसके कई साथी बीमार होने के कारण बहरिंग की सर्दी न सह सके इस लिए कुक को फिर सैन्डविच द्वीप याद आया और उसका जहाज़ जनवरी के अन्त में हवाई नामक द्वीप के किनारे पहुँच गया। इस द्वीप के आदिम निवासियों ने कुक के जहाज़ को पहले अपने उस बड़े नेता का जहाज़ समझा जो किसी समय में उनके रहने के लिए हवाई से अच्छा देश ढूँढने पश्चिम समुद्र पर गया था और जिसके लौटने की वह सब सैकड़ों वर्ष से आशा लगाये प्रतीक्षा किया करते थे। कुक के पहुँचते ही द्वीप में एक खलबली पड़ गई और लोग "लोनो ! लोनो !!" चिल्लाते हुए समुद्र-तट पर

दौड़ आये। जब कुक और उसके साथी जहाज़ से उतर कर द्वीप में गए तो लोगों को अपनी भूल का पता चला और निराश होकर वह सब बस्ती में लौट गए। कहा जाता है कि जब उन लोगों को विदेशियों के द्वीप में आबाद होने की सूचना मिली तो वह अपने राजा के पास गये और उससे निषेध-पत्र निकलवा कर कुक से द्वीप छोड़ कर चले जाने की प्रार्थना की। विदेशियों को अपनी बन्दूकों का घमंड था। पहले तो उन्होंने राजा के निषेध-पत्र की कुछ परवा नहीं की फिर जब द्वीप के लोगों ने उन्हें शिकार खेलने से रोका और खाने-पीने की वस्तुएँ देने से इन्कार किया तो कुक और उसके कुछ साथी द्वीप के राजा से समझौता करने गए। जिस समय यह लोग राजा के दरबार में पहुँचाए गए तो द्वीप के निवासियों की एक भीड़ लग गई। कुक और उसके साथी हथियार लिये हुए थे तो भी उनका इरादा राजा से लड़ाई करने का न था। द्वीप में ठहरने की शर्तों पर बातचीत हो ही रही थी कि यकायक यह ख़बर फैल गई कि विदेशियों के जहाज़ पर से गोली चलाकर द्वीप के एक प्रतिष्ठित आदमी को मार डाला गया। इस ख़बर को सुनते ही लोगों ने गुस्से में आकर चिल्लाना शुरू किया और एक आदमी ने कैप्टेन कुक को भाला दिखाया। फिर क्या था, एक दूसरे पर टूट पड़ा और कुक ने एक आदमी को गोली मार दी और अपने साथियों को समुद्र की तट की ओर निकल चलने का हुक्म दिया। इतने में लोग इन विदेशियों पर टूट पड़े। कुक और उसके साथियों में से

कई तो ठौर रहे और बाक़ी लोग अपनी जानें लेकर जहाज़ पर भाग गए। राजा ने कैप्टेन कुक की लाश उसके साथियों के पास भिजवा दी। १४ फ़रवरी सन् १७७६ को लाश का जल-प्रवाह कर के वह लोग द्वीप से चल दिए और फिर बारह वर्ष तक इस द्वीप समूह में कोई अँग्रेज़ नहीं आया।

सन् १७९३ में कैप्टेन वैनकुँवर नामक अंग्रेज़ नाविक जो कैप्टेन कुक के साथ कई बार यात्रा कर चुका था इन द्वीपों में आया तो उसे मालूम हुआ कि पिछले दस वर्ष में हवाई के लोगों ने बड़ी उन्नति कर ली थी। उनके कामेहमेह नामक राजा ने समूह के कई द्वीपों को एक शासन-प्रणाली के आधीन कर लिया था जिस से प्रजा की दशा बहुत कुछ सुधर गई थी और प्रत्येक द्वीप में धन-धान्य की वृद्धि हो गई थी। समूह के बीस द्वीपों में से आठ आबाद हो गए थे और बाक़ी के बारह द्वीपों में भी लोगों ने ऐसे स्थानों में जो ज्वालामुखी पहाड़ों की अग्नि-धारा से दूर थे खेती करना आरम्भ कर दिया था। इस उन्नति के होते हुए भी भूकम्प और जलते हुए लावा के अकस्मात प्रवाह के कारण कई एक द्वीपों पर उदासी छाई रहती थी। कहा जाता है कि कैप्टेन वैनकुँवर ने द्वीप के निवासियों को इस समय एक गाय और एक बैल दिया जो इससे पहले उन लोगों ने कभी देखे तक नहीं थे। यह पशु जंगलों में स्वतंत्र घूमते रहे और कुछ वर्षों में उनकी तादाद खूब बढ़ गई। कैप्टेन वैनकुँवर के लौट जाने के बाद फिर किसी अँग्रेज़ नाविक ने

इन द्वीपों की ख़बर न ली। इंगलैंड की सरकार को इन द्वीपों के लेने से किसी प्रकार का लाभ न दिखाई दिया इस लिए कामेहमेह के ख़ानदान का राज्य हवाई में लगभग सौ वर्ष बना रहा और लोग अपनी पुरानी प्रथा और प्रणाली के अनुसार जीवन-निर्वाह और उन्नति करते रहे। कामेहमेह के ख़ानदान के तीन राजा हुए जो सब के सब प्रजा की दशा सुधारने की चेष्टा करते रहे और समय के अनुसार ऐसी सारी बातों को सचारते रहे जिनसे देश में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती गई। यद्यपि हवाई के लोगों ने कैप्टेन कुक को मार डाला था तो भी यह नहीं समझना चाहिए कि उन लोगों में अतिथि-सत्कार की कमी थी। कुक के मारे जाने के कारण कई बताए जाते हैं। कुछ लोगों ने लिखा है कि कुक ने द्वीप वालों के धार्मिक विचारों की हँसी उड़ाई थी और एक साधु व्यक्ति का उसके विचारों के कारण अपमान किया था। जो हो, कामेहमेह प्रथम के राजत्वकाल में एक जॉन यंग नामक अमेरिका का नाविक ह्वेल मछली का शिकार खेलता इन द्वीपों में पहुँचा और हवाई की प्राकृतिक शोभा से ऐसा आकर्षित हुआ कि वह वहीं रहने लगा। मनुष्य-प्रेम से उसका हृदय परिपूर्ण था, मनुष्य-सेवा को वह अपना धर्म समझता था। उसने अमेरिका और योरोप की सभ्यता की बहुत सी अच्छी अच्छी बातें द्वीप में सचारीं और द्वीप के निवासियों की उन्नति में दिल खोल कर योग दिया। राजा ने उसका बड़ा सम्मान किया और कुछ

दिन में उसे बहुत सी उपजाऊ भूमि देकर जागीरदार बनाया। कहा जाता है कि हवाई के एक ऊँचे ख़ानदान की लड़की से उसका विवाह भी हुआ था। अपनी मृत्यु के समय वह हवाई द्वीप का गवर्नर था।

कामेहमेह द्वीतीय के राजत्वकाल में अमेरिका से ईसाई मत के मिशनरी लोग आए जिन्होंने बहुत से स्कूल खोलकर द्वीपों में पाश्चात्य विद्या का प्रचार किया और साथ ही बड़े ज़ोरों से अपना धर्म फैलाना आरम्भ किया। सन् १८५० तक द्वीपों के सभी लोग लिखने-पढ़ने लगे। तीव्र-बुद्धि के युवक जहाज़ों में नौकरी करके या मिशनरियों की मदद से उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त करने को अमेरिका जाने लगे। थोड़े दिन में हवाई में कालेज खुल गए और द्वीपों के सैकड़ों युवक आधुनिक विद्याओं में प्रवीण होने लगे। धीरे धीरे प्रजा का शासन-प्रणाली पर प्रभाव पड़ने लगा और राजा के अधिकार प्रजा के चुने हुए मंत्रियों को मिल गए। कामेहमेह तृतीय की मृत्यु के उपरान्त सन् १८९३ में महारानी लिलिओकलानी ने प्रजा के अधिकार छीन लेने की चेष्टा की इस कारण वह गद्दी से उतार दी गई। इस समय हवाई की प्रजा ने यूनाइटेड स्टेट्स की गवर्नमेन्ट से प्रार्थना की कि उनके देश को अपनी शासन-प्रणाली में सम्मिलित कर ले परन्तु यह प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई। इस पर हवाई के लोगों ने सैनफ़र्ड बी० डोल को प्रेज़ीडेन्ट चुनकर अपने देश में 'रिपब्लिक' स्थापित कर ली। पाँच वर्ष

के बाद यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार को हवाई द्वीप-समूह की क़द्र मालूम हुई। कई दूरदर्शी नेताओं ने यह सोच कर कि पनामा की नहर खुल जाने पर ऐटलान्टिक और पैसिफ़िक महासागरों में चलने वाले सारे जहाज़ हवाई के बन्दरगाह हानोलूलू से हो कर जाया करेंगे अपनी गवर्नमेन्ट को यह द्वीप-समूह यूनाइटेड स्टेट्स में मिला लेने को राज़ी कर लिया। कुछ दिन में दोनों देशों में एक संधि हुई जिस से हवाई द्वीप-समूह यूनाइटेड स्टेट्स में सम्मिलित कर लिया गया और एक गवर्नर नियुक्त कर के वहाँ भेज दिया गया। इन द्वीपों के शासन के लिए हानोलूलू में एक पारलियामेन्ट बनाई गई जिसका एक प्रतिनिधि यूनाइटेड स्टेट्स की काँग्रेस में ले लिया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होने से पहले ही हवाई में अमेरिका की शिक्षा-प्रणाली चला दी गई थी जिस से अँग्रेज़ी भाषा का प्रयोग न केवल विदेशियों के संसर्ग में बल्कि हवाई के आदिम निवासियों के आपस के व्यवसायों में भी होने लगा था। गन्ने की खेती के लिए भूमि विशेष प्रकार से उपजाऊ साबित हुई। एक बीघे ज़मीन में जितना गन्ना हवाई में पैदा होता है उतना संसार के किसी भाग में नहीं होता। अमेरिका की मदद से दस-बारह वर्ष के भीतर बीसों शकर के कारख़ाने खुल गए और साल में करोड़ों रुपये का माल बाहर जाने लगा। यही हाल अनन्नास का भी हुआ। बड़े बड़े कारख़ानों में अनन्नास छील कर टीन के डिब्बों में बन्द किया जाने

लगा और दूर दूर के देशों में भेजा जाने लगा। कॉफ़ी और चावल का व्यापार भी ख़ूब बढ़ाया गया। द्वीपों में फूलों की बहुतायत होते हुए यह असम्भव था कि शहद का व्यापार न बढ़ता। लाखों मन साफ़ और निर्मल शहद बाहर जाने लगा। इस बढ़ती के साथ-साथ बड़े बड़े नगर बसने लगे जिसमें पानी, बिजली इत्यादि आधुनिक काल की सभी सुविधाएँ हो गईं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यह बीस छोटे-बड़े द्वीप जिनका क्षेत्रफल हमारे एक जिले से ज्यादा नहीं अपने व्यापार के कारण दूर दूर विख्यात हो गए और जापानी, चीनी, फिलिपीनों, पोर्चुगीज़, अमेरिकन और बहुत सी जातियों के हज़ारों आदमी यहाँ आकर बस गए। धीरे धीरे इन द्वीपों की आबादी बढ़ती गई और बाक़ी के द्वीप भी बसाए जाने लने। अब इस द्वीप-समूह का मान इतना बढ़ गया है कि अँग्रेज़ उसे खो बैठने पर पछताते हैं, अमेरिका वाले उसे अपने हाथ में रखने के कारण पैसिफ़िक महासागर के चौधरी बने बैठे हैं, जापान के सारे मंसूबों पर उसके कारण ओस पड़ी रहती है।* यूनाइटेड स्टेट्स ने इस द्वीप समूह को अपनी जहाज़ी ताक़त का केन्द्र बना रक्खा है। यहाँ पाँच महाद्वीपों के जहाज़ कोयला और खाने-पीने की चीज़ें लेते हैं और एक जहाज़ का माल

* हवाई द्वीप के महत्व का अनुमान इस बात से भली भाँति किया जा सकता है कि जापान ने वर्तमान युद्ध में पदार्पण करते ही पर्ल हार्बर पर छापा मारा और उसे अपने अधिकार में ले लिया

दूसरे जहाज़ पर लाद कर दूर दूर पहुँचाया जाता है। हज़ारों यात्री इस पैसिफ़िक महासागर के स्वर्ग में हर साल आते हैं। क्या लड़ाई, क्या वणिज्य सभी बातों के लिए यह द्वीप-समूह पैसिफ़िक महासागर की कुंजी है। यहाँ के पर्ल नामक बन्दरगाह में रह कर थोड़े से जहाज़ भी बड़े से बड़े जहाज़ी बेड़े का मुक़ाबला कर सकते हैं और अमेरिका के पश्चिमी किनारे की हिफ़ाज़त करते हैं। हानोलूलू का पुराना बन्दरगाह अब बढ़ाया जा रहा है क्योंकि उसमें वह सब जहाज़ नहीं ठहर सकते जो यहाँ आते हैं। जैसे जैसे पनामा की नहर के द्वारा नई दुनिया का वाणिज्य एशिया में फैलता जायगा और स्वेज़ की नहर का जैसा महत्व इस नहर का भी हो जायगा इन द्वीपों की उन्नति होती जायगी।

पिछले डेढ़ सौ वर्ष की उज्वल कीर्ति में एक काला धब्बा भी है। जान यंग ने कामेहमेह की आज्ञा से बहुत से गौराँग विदेशियों को हवाई में ठहरा लिया था और उनकी मदद से पाश्चात्य कलाओं और विद्याओं को द्वीप में सचारता था। इन विदेशियों में आस्ट्रेलिया के कुछ दुष्ट और स्वार्थी मनुष्य भी थे जिन्होंने चुपके से मदिरा बनाने के छोटे छोटे कारख़ाने बना लिये थे और द्वीप के आदिम निवासियों को मदिरापान कराते थे। यह दुष्कर्म यहाँ तक बढ़ा कि जनता में मदिरापान ज़ोरों से होने लगा और ख़ुद राजा भी इसका शिकार बन गया। जब यंग को ख़बर हुई तो उसने राजा पर कड़ा पहरा लगा दिया

और जब उसकी यह बुरी आदत छूट गई तो उससे हुक्म निकलवा कर मदिरा बनाने के सब कारख़ाने बन्द करा दिये। कहा जाता है कि कैप्टेन कुक के समय द्वीपों की आबादी तीन लाख थी परन्तु मदिरापान की आदत पड़ जाने के कारण लोगों की तन्दुरुस्ती ख़राब हो गई और द्वीप के आदिम निवासी उन बीमारियों के आघात का सामना न कर सके जो गौरांग जातियों ने अपने साथ लाकर इस देश में फैलाई थीं। परिणाम यह हुआ कि सन् १८५२ में इन द्वीपों के आदिम निवासियों की संख्या केवल एक लाख रह गई। जैसे जैसे गौरांग जातियों की आबादियाँ बढ़ती गईं और उनका अधिकार देश में स्थापित होता गया नई नई बीमारियाँ फैलती गईं यहाँ तक कि सन् १९२४ में उनकी संख्या केवल २१,२०० रह गई। यह एक अद्भुत बात देखने में आती है कि जिस किसी देश में योरीपोय जातियों का सम्पर्क उन आदिम निवासियों से हुआ है जिन्हें वह जातियाँ असभ्य कहती हैं उन सब देशों में इसी तरह से बीमारियाँ फैली हैं और लोगों की संख्या कम होती गई है। अफ़रीका के ज़ूलू, दक्षिण अमेरिका के रेडइन्डियन, ऑस्ट्रेलिया के बुशमेन, पैसिफ़िक के द्वीपों की पालीनीसियन जातियाँ इसी क्रूर प्राकृतिक नियम के अनुसार लोप होती जा रही हैं। ऐंगलोसैक्सन क़ौम की तोपों ने जो काम नहीं कर पाया वह इस तरह बीमारियाँ फैलने से पूरा हो गया और नई आबादियों में निस्संकोच फैलकर फूलने-फलने का उस जाति को अवसर

मिल गया। बहुत से विज्ञान-वेत्ताओं का कथन है कि वह माइक्रोब (बीमारी के कीड़े) जो हमारे शरीर में रहते हुए भी हमें नुकसान नहीं पहुँचाते हम से असभ्य जातियों को लग जाते हैं और उन्हें समाप्त कर देते हैं। हवाई द्वीपों में भी पिछले डेढ़ सौ वर्ष में ऐसा ही हुआ है। गौरांग जातियों से अनेकों बीमारियों के माइक्रोब यहाँ के आदिम निवासियों के शरीर में प्रवेश कर गए और उन्हें वह बीमारियाँ लग गईं जो विदेशियों को इन द्वीपों में आने के समय नहीं थीं। कहा जाता है कि विदेशियों के आने के पहले इन द्वीपों में कुष्ट रोग न था परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से यह रोग यहाँ इतना फैला कि विदेशियों को अपने बचने की बड़ी बड़ी युक्तियों का प्रयोग करना पड़ा। फिर थोड़े ही दिनों में कोढ़ियों को अलग रखने की फ़िक्र हुई और मोलोकाई द्वीप में एक विशेष "कैम्प" स्थापित कर के सब बीमारों को वहाँ भेज दिया गया। मोलोकाई के कैम्प में जो लोग भेजे जाते थे उनको अलग रहने के कारण बड़ी कठिनाइयाँ और कष्ट सहने पड़ते थे। सन् १८७५ में बेल्जियम देश का जोज़ेफ़ डेमियन नामक एक बड़ा उदार और परोपकारी मिशनरी मोलोकाई में आया और रोगियों की दशा देख कर उसने उनकी सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया। अमेरिका और अन्य देशों के मिशनरी भी उसे देख कर मोलोकाई पहुँचे। उन सब ने इस कैम्प में बड़े आत्मत्याग के कार्य किए जो मनुष्य-जाति की सहानुभूति और उदारशीलता

के चिर-स्मरणीय उदाहरण हो गए हैं। परन्तु सैकड़ों और हज़ारों ऐसे लोगों के अपनी जान होम देने से भी प्रकृति के इस आघात से यह जातियाँ नहीं बचाई जा सकती हैं। यह ख़याल करके दिल दहल उठता है कि आज जब हवाई में ऐसी उन्नति हो रही है, वह लोग जो उसका फल भोगने के सच्चे अधिकारी हैं, जिन के पूर्वज नहीं मालूम क्या क्या मुसीबतें झेल कर और कैसे कैसे पुरुषार्थ के काम करके इस द्वीप समूह में आए और आबाद हुए, वह लोग धीरे धीरे अपने भरे-पुरे देश को ग़ैरों के लिए छोड़ कर इस संसार से लोप हुए जा रहे हैं।

हवाई द्वीप-समूह के आदिम निवासी और उनकी सभ्यता

योरोप की उन जातियों ने जिनका अधिकार देश-देशान्तर में किसी न किसी प्रकार स्थापित हो गया था संसार में "सभ्य" और "असभ्य" का चर्चा खूब फैलाया। उनके विचार से किसी जाति का "असभ्य" होना इसके लिए काफ़ी था कि उसे कोई न-कोई "सभ्य" जाति अपना ग़ुलाम बना ले। इस बात का निर्णय कि कौन "सभ्य" है और कौन "असभ्य" उन जातियों ने अपने ही हाथ में रक्खा था। संसार की बहुत सी प्राचीन जातियाँ "असभ्य" होने के अपराध में ग़ुलाम बना ली गईं। यदि जर्मनी वालों ने अफ़रीका की "असभ्य" जातियों को शासन की योग्यता न रखने के अपराध में अपने अधिकार में ले लिया तो हालैंड को जावा के आदिम निवासियों को इस डर से कि वे एक दूसरे को भून कर खा न डालें अपने आधीन करना पड़ा। अंग्रेज़ों ने सारे संसार को यह विश्वास दिला दिया है कि हिन्दुस्तान में वे एक बहुत बड़ी जाति को "सभ्य" बनाने के लिए ठहरे हुए हैं। योरोप और अमेरिका के लोगों में यह विश्वास इतना दृढ़ करा दिया गया है कि वे

लोग भारतीय राजनैतिक आन्दोलन को एक "असभ्य" जाति की कृतघ्नता-मात्र समझ कर उसकी ओर ध्यान तक नहीं देते। अभी थोड़े दिन की बात है जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के सत्याग्रह करके जेल जाने पर आश्चर्य प्रकट करते हुए एक गौरांग स्त्री ने पूछा था—'यह स्त्री तो योरोपीय ढंग के सुसज्जित मकान में रहती और हम लोगों की तरह "सभ्य" जीवन व्यतीत करती है; फिर यह क्यों "असंभ्य" मनुष्यों की तरह सरकार से लड़ कर जेल जाना पसन्द करती है ?' बहुत कुछ समझाने पर भी उस गौरांग स्त्री की समझ में यह बात नहीं आई कि पिछले तीस वर्ष का भारतीय आन्दोलन वास्तव में उसी "सभ्यता" के आघात से बचने का उपाय है जो उसके देश के लोग हिन्दुस्तानियों को दो सौ वर्ष से देने की चेष्टा कर रहे हैं। उसे स्वप्न में भी यह ख़याल न आया था कि इस पृथ्वी पर कोई ऐसी भी जाति हो सकती है जो पाश्चात्य "सभ्यता" का अनादर करके अपनी "असभ्य" संस्कृति को सुरक्षित रखने का इतना प्रयत्न करे।

और उस गौरांग स्त्री को यह ख़याल आ भी कैसे सकता था ? "सभ्य" देशों के सैकड़ों अजायब घर उन प्राचीन जातियों की परंपरागत कलाओं के नमूनों से भरे पड़े हैं जिनकी संस्कृति को योरोप और अमेरिका की उद्योग-संस्था ने तहस-नहस कर डाला। उन प्राचीन जातियों को अपनी अर्थ-पूर्ण सुन्दर युक्तियों को त्याग कर अपनी जान बचाने को फ़ैक्टरियों

के लिए कच्ची सामग्री पैदा करने में मज़दूरी करनी पड़ी। पैसिफ़िक महासागर के मारकीज़स द्वीपों के आदिम निवासियों के सम्बन्ध में डब्लू० सी० हैन्डी ने लिखा है—"गौरांग जातियों की विध्वंसकारिणी चेष्टाओं ने प्राचीन लोगों की संस्कृति को प्रायः जड़-मूल से नष्ट कर डाला।"* सच तो यह है कि जिस चीज़ को योरोप और अमेरिका वाले "गौरांग जातियों का भार" कहते हैं वह वास्तव में प्राचीन जातियों के लिए मृत्यु का भार सिद्ध हुई है। ईसाई मत के गौरांग मिश्नरी तो अशिष्ट प्राचीन जातियों की संस्कृति को "पाशविकता की पैशाची युक्तियाँ"† कहते और साम, दाम, दंड, भेद, सभी रीतियों का प्रयोग करके उसे नष्ट-भ्रष्ट करते ही थे, परन्तु वह लोग जो अपने को वैज्ञानिक और मानवशास्त्र का पंडित कहते हैं वह भी अपने हृदय में ऐसी ही अनभिज्ञ भावनाएँ रखते हैं। सर जेम्स जार्ज फ्रेज़र, जिन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा काल मानवशास्त्र के गूढ़ विषयों के समझने और समझाने में बिताया है, और जो सैकड़ों प्राचीन जातियों के विश्वासों और संस्कारों की व्याख्या मोटी मोटी ग्यारह जिल्दों में कर चुके हैं, एक पुस्तक की भूमिका में गर्व-पूर्ण शब्दों में लिखते हैं—"(इस कठिन विषय की परीक्षा में) मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं जैसे धीरे धीरे किसी ऊँची पहाड़ी

* W. C. Handy, *L'art des Ile Marquises*, 1938, page 13.

† "The beastly devices of the heathen."

पर चढ़ा जा रहा हूँ जिसकी चोटी पर पहुँच कर मैंने उसी प्रकार मानव-दशा का आन्तरिक दृश्य देखा जैसे मूसा ने पिसगा की चोटी पर से पैलेस्टाइन को देखा था। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि किसी मायावी व्यक्ति ने छल करके मुझ से वह बातें पुस्तकों में लिखवाई हैं जिन्हें मैं आदिम जातियों का भ्रम, घोर अन्धकार, दुःखमय नैराश्य और निष्फल प्रयत्न के सिवा और कुछ नहीं समझ सकता।"* इस आधुनिक मूसा के यह गर्वपूर्ण शब्द प्राचीन संस्कृति की तो नहीं परन्तु योरोपीय "सभ्यता" की व्याख्या अवश्य करते हैं। सर जेम्स फ्रेज़र का यह कथन प्रोफ़ेसर लैनमन के उस कथन की याद दिलाता है जिसमें उन्होंने हिन्दू जाति के उपनिषद् को "असार, शुष्क, बच्चों की सी बातें"† बताया था। "सभ्यता" के उपासक, चाहे वे मिशनरी हों चाहे वैज्ञानिक, किसी भी प्राचीन संस्कृति को अन्वेषक की समदृष्टि से नहीं देख पाते। उनका अहंकार उन्हें यह सोचने ही नहीं देता कि ईसाई मत और पाश्चात्य "सभ्यता" के कहीं पहले से मानव जाति इस पृथ्वी पर रहती और अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार यथार्थ की खोज करती चली आती है।

जिस समय से पैसिफ़िक महासागर के द्वीपों पर योरोपीय

---

* Preface to *Aftermath* by Sir James George Fraser.

† *Sanskrit Reader* by Professor Lanman, page 357.

जातियों ने अपना अधिकार जमाया है इसी समय से द्वीपों के आदिम निवासियों को "सभ्य बनाने का काम जारी है। इस शुभ काम में जितने परोपकारी लोगों ने हिस्सा लिया है वे सब के सब द्वीपों की प्राचीन संस्कृति को मूढ़-कल्पनाओं का भंडार समझते रहे हैं। "सभ्यता" की ओर से पहले तो बन्दूकों और तोपों का दिल खोल कर प्रयोग किया गया फिर जब आदिम निवासियों की आत्मा का सुधार आरंभ हुआ तो मिशनरियों को द्वीपों में पहुँचाकर ऐसी संस्थाएँ खुलवाई गईं जिनके द्वारा विचारों में परिवर्तन कराया गया। स्कूल और कालेज खोले गए जिन में शिक्षा की घूस दे दे कर ईसाई बनाए गए। पाश्चात्य जातियों के दिल बहलाव की बहुत सी वस्तुएँ उन सरल स्वभाव के मनुष्यों को दी गईं; फिर धीरे धीरे "सभ्यता" ने बहुत से द्वीपों में मदिरा बनाने के कारख़ाने खोल दिए। थोड़े ही समय में द्वीपों के सीधे-सादे लोगों ने अनेकों व्यसनों की भी शिक्षा प्राप्त करली और वह भी दुम कटी लोमड़ी की तरह अपने मित्रों को "सभ्य" बनाने लगे। जिन देशों में संतोष और प्रीति-भाव से जीवन-निर्वाह होता था वहाँ का हर एक आदमी दूसरे के सुख और आनन्द का भूखा भेड़िया बना दिया गया।

एक जर्मन कवि और दार्शनिक का कथन है कि जिन बातों को हम बहुधा आदिम जातियों की मूढ़कल्पना समझते हैं और घृणा की दृष्टि से देखते हैं उन बातों में मनुष्य-जीवन के सैकड़ों गूढ़ रहस्य और हज़ारों बहुमूल्य अनुभव छिपे होते हैं।

विजई योरोपीय जातियों ने कभी "असभ्य" जातियों के विश्वासों या उनकी पुराकथाओं के तत्व को समझने का यथोचित प्रयत्न नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो उस प्राचीन संस्कृति का लोप हो गया और दूसरी ओर द्वीपों के निवासी वास्तव में जँगली होते गए। एक चीनी कहावत है कि यदि किसी जाति की रीढ़ तोड़ देनी मंजूर हो तो उसके अतीत और भविष्य को पृथक पृथक रक्खो। योरोप के लोगों ने पैसिफ़िक महासागर की आदिम जातियों के साथ यही किया और उन्हें जंगली बनाकर छोड़ा। फ़रवरी सन् १६३६ के सचित्र लन्डन न्यूज़ में एक अंग्रेज़ महोदय अस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों की दीक्षापद्धति के विषय में लिखते हैं—इस जाति की पुराकथाओं में कुछ ऐसे संस्कारों का वर्णन मिलता है जो जाति के वृद्ध-जनों की आज्ञा-पालन न करने के प्रायश्चित्तों में काम में लाए जाते थे। लेखक महोदय कहते हैं कि कहीं कहीं आज भी वृद्धजनों की प्रज्ञा और प्राबल्य का उचित सम्मान किया जाता है जिसके कारण लोगों के आचरण ठीक रहते हैं; "परन्तु जो लोग हमारी 'सभ्यता' के प्रभाव में आ जाते हैं उनके हृदय में यह श्रद्धा बाक़ी नहीं रह जाती और इसी से वे लोग शीघ्र भ्रष्टाचार हो कर पतित हो जाते हैं।" लेखक महोदय की यह आलोचना केवल आस्ट्रेलिया ही के नहीं किन्तु सारे द्वीपों के आदिम निवासियों की नैतिक दशा पर घटित की जा सकती है। "सभ्यता" के प्रतिनिधि यह भूल

जाते हैं कि जैसे कोई भी पौदा बिना जड़ के हवा में ऊँचा उठकर फूल-फल नहीं सकता उसी तरह कोई भी जाति अपनी प्राचीन संस्कृति का सहारा छोड़कर किसी दूसरी "सभ्यता" के बल पर इस संसार में प्रतिभाशाली नहीं हो सकती।

व्यक्ति और समाज दोनों ही का जीवन उसी समय तक व्यवस्थित रह सकता है जब तक जाति की परंपरागत संस्कृति से उसका संबंध तोड़ा न जाय। कोई पेड़ या पौदा उस शक्ति से अधिक बलवान नहीं हो सकता जो उसके बीज में संचित होती है। यही हाल व्यक्ति और समाज का भी है। कोई व्यक्ति या समाज अपनी बुद्धि-सामर्थ्य या स्वभाव से हट कर उन्नति नहीं कर सकता। संचित कर्म की भाँति उसकी बुद्धि-सामर्थ्य उसके भविष्य को मार्ग दिखलाती और व्यवस्थित करती है।

आदिम सभ्यता के जो चिन्ह पैसिफ़िक महासागर के द्वीपों में पाए जाते हैं उनसे जान पड़ता है कि वहाँ बसी हुई जातियों के पूर्वज किसी प्राचीन काल में एशिया से गए थे। बड़े बड़े द्वीपों की प्राचीन संस्कृति की तह में जो विचार और धार्मिक विश्वास मिलते हैं वह भी भारतवर्ष और चीन के तत्वज्ञान के बदले हुए रूप हैं। यदि इन द्वीपों की सभ्यता के साथ साथ हम अमेरिका की प्राचीन सभ्यता को भी ध्यान से देखें तो उन विचारों और विश्वासों का वृत्त और भी बढ़ जाता है और हमारे सामने एक ऐसी सभ्यता का चित्र उपस्थित हो जाता है जो एशिया और अमेरिका को पैसिफ़िक के द्वारा शृंखलाबद्ध कर

देती है। जब एक बार यह चित्र हमारे सामने आ जाता है तो हमें उन वैज्ञानिकों और मानवशास्त्र के अन्वेषकों की बात समझनी कठिन हो जाती है जो पैसिफ़िक के द्वीपों के आदिम निवासियों की संस्कृति और सभ्यता को वहीं की अकस्मात उपज बताते हैं। यह जानते हुए कि मानवजाति के अनुभवों और विचारों में कई प्राकृतिक कारणों से समता हो सकती है, इस मध्य अमेरिका की शिल्पकला और मूर्ति-निर्माण-कला को एक ओर ईस्टर द्वीप और बाली की कलाओं के नमूनों से और दूसरी तरफ़ प्राचीन भारत और मंगोलिया की कलाओं से तुलना किए बिना नहीं रह सकते। यदि हम पक्षपात छोड़कर अन्वेषक की दृष्टि से सभ्यता के इन चिन्हों को देखें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि पैसिफ़िक महासागर के द्वीपों की आदिम सभ्यता अवश्य किसी ऐसी सभ्यता का रूप है जो किसी समय में एशिया से अमेरिका तक फैली हुई थी और मानवजाति के सारे अनुभवों को एक ही तत्वज्ञान की दृष्टिविशेष से देखती थी। इस दृष्टि से देखने पर हमें मध्य अमेरिका की माया नामक सभ्यता की पूर्व-दशा का अच्छा और ठीक ज्ञान हो सकता है; दक्षिण अमेरिका की पिरूवियन सभ्यता के गूढ़ रहस्य समझ में आ सकते हैं; मेक्सिको की आज़टेक सभ्यता के मूलविचारों का हमें पता लग सकता है। सैकड़ों पुण्य कथाओं का ठीक अर्थ, बीसों देवी-देवताओं की उपाधियाँ और उनकी पूजा का माहात्म, दर्जनों कर्मकांड विधियों का मर्म हमें उसी समय

समझ में आता है जब हम हिन्दू और बौद्ध विचारपद्धति को पैसिफ़िक महासागर की प्राचीन संस्कृति से मिलाते और अमेरिका तक ले जाते हैं। मेक्सिको के बीसों देवी-देवता हिन्दू पुराणों में मौजूद हैं; मध्य अमेरिका की नहीं मालूम कितनी कथाएँ रामायण और महाभारत में मिलती हैं। बाटुरीनी ने प्राचीन अमेरिका की बहुत सी ऐसी देवियों का उल्लेख किया है जो हमारी देवी और अप्सराओं से मिलती हैं*। बैनक्राफ़्ट ने पैसिफ़िक महासागर के आदिम निवासियों के प्राचीन विचारों के सम्बन्ध में बहुत से ऋषियों का ज़िक्र किया है जो हमारे देश के ऋषियों से मिलते-जुलते हैं†। मेक्सिकों के यप्पन ऋषि‡ वास्तव में हिन्दू इंद्र हैं जो सदा इस डर से काँपते रहते हैं कि कहीं उनका इन्द्रासन न छिन जाय; माया सभ्यता में अप्सराएँ तपस्या से लोगों को डिगाने भेजी जाती थीं और उनकी सफलता पर देवता ख़ुशी मनाते थे; हमारे देश की तरह प्राचीन अमेरिका के लोग उन पेड़ों को पवित्र मानते थे जिनमें से दूध निकलता है; पैसिफ़िक के द्वीपों में सोना, नीलम, मूंगा, साँप, फूल, गंध, ख़ाली घड़ा, आदि

---

* Boturini, *Idea*, page 15 and 63-66.

† *The Native Races of the Pacific States* by Bancraft vol. III.

‡ Seller, *Codex Vaticanus* (Robertson's trans.) pp 133-188.

उसी प्रकार शुभ और अशुभ, दैवी और दुनियावी माने जाते हैं जैसे भारतवर्ष में। बहुत से द्वीपों में हिन्दू और बौद्ध मत के ऐसे व्रत किए जाते हैं। इन सारी समानताओं के होते हुए यह कहना केवल हठधर्मी है कि प्राचीन अमेरिका की जातियों का किसी अन्य देश की जातियों से सम्पर्क नहीं हुआ या यह कि पैसिफ़िक महासागर की आदिम जातियाँ मेढ़क की भाँति द्वीपों में अकस्मात् उपजीं और कूपमंडूक की भाँति वहीं निर्मित स्थानों में बन्द पड़ी रहीं।

सांस्कृतिक समानता के साथ साथ जब हम जातिविषयक लक्षणों पर भी विचार करते हैं तो हमें जान पड़ता है कि पैसिफ़िक द्वीपों में एशिया की कई जातियों की सन्तान रहती हैं। योरोप और अमेरिका के बहुत से अन्वेषकों का मत है कि लगभग दो लाख वर्ष हुए जब मैलेशिया की ओर से एक जन-समूह छोटी छोटी नावों द्वारा उन द्वीपों में पहुँचा था जो उस समय पास पास थे। इस समूह के कुछ साहसी लोग दक्षिण के द्वीपों में भी पहुँचे थे और वहीं ठहर गए थे। जैसे जैसे समय बीतता गया पृथ्वी के बड़े बड़े खंड समुद्र के नीचे जाने लगे और यह जाति मजबूर हो होकर दक्षिण के द्वीपों में जाने लगी यहाँ तक कि कुछ लोग आस्ट्रेलिया में भी पहुँच गए। जैसे जैसे अधिक बलवान जातियाँ उनके पीछे इन द्वीपों में आती गईं यह लोग आगे बढ़ते गए और आस्ट्रेलिया को पार करके समुद्र से रास्ता रुक जाने के कारण तस्मानिया में

बस गए। इन जन-समूह की सन्तान अभी सन् १८७५ तक तस्मानिया में मिलती थी परन्तु अब उसका लोप हो गया है। इसी जाति के कुछ लोग जो अपने पीछे आने वाली निग्रायड जाति से मिश्रित हो गए थे आज भी आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में पाए जाते हैं। इस आस्ट्रोलायड जाति की भी संख्या बहुत तेज़ी से घट रही है। निग्रायड जाति से मिश्रित होकर जो नई जाति बनी थी वह फ़ीजी, न्यूज़ीलैंड, फ़िलिपाइन द्वीप-समूह और माइक्रोनीसिया और बहुत से छोटे छोटे द्वीपों में फैल गई थी। हज़ारों वर्ष के उपरान्त मध्य एशिया से एक मंगोलियन जनसमूह टिड्डीदल के समान महासागर के द्वीपों पर छा गया और क्या निग्रायड क्या आस्ट्रोलायड सभी जातियों को उनके सामने सर झुकाना पड़ा। यह नई जाति अपने साथ एक नई सभ्यता लेकर आई थी और जहाँ जहाँ वह आबाद हुई पहले से रहने वाली सारी जातियों को उसने अपने रंग में रंग दिया। हज़ारों वर्ष मिल-जुलकर साथ रहने और आपस में शादी-ब्याह करने से धीरे धीरे महासागर के द्वीपों में एक नई जाति और नई सभ्यता तैयार हो गई। बहुत से अन्वेषकों का विचार है कि वह माउरी नामक जाति जो एक नई और जीवित सभ्यता लेकर अब से बीस हज़ार वर्ष पूर्व मैलेशिया के दुर्गम स्थानों तक पहुँच गई थी वह मंगोलायड और निग्रायड जातियों के सम्मिश्रण से बनी थी और कई हज़ार वर्ष तक फूलती-फलती रही।

इन चार जातियों के आने के हज़ारों बरस बाद एक जन-समूह महासागर पर फिर उमँड़ आया और अपने पहले आने वाली जातियों से अधिक बलवान होने के कारण दूर दूर तक फैल गया। कोरल द्वीपों और लावा से बने हुए जलते-भुनते द्वीपों में भी यह लोग पहुँच कर आबाद हो गए। यह लोग एशिया के किसी ऐसे देश से आए थे जो उस प्राचीन समय में भी सभ्यता के ऊँचे शिखर पर पहुँचा हुआ था। दया, धर्म, न्याय, सहानुभूति सहयोग आदि मानवता के सारे गुण इनमें पाए जाते थे। साहस और पुरुषार्थ के कार्यों में अपनी जान दे देने को यह लोग खेल समझते थे। गुरुजनों की सेवा करना, सदा प्रसन्नचित्त रहना, अपने आचारों को ठीक रखना यह लोग अपना धर्म समझते थे। संसार की सारी वस्तुओं को चेतन और सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, अग्नि, आकाश इत्यादि प्राकृतिक शक्तियों को यह लोग देवता मानते थे। ग्रहण के समय उग्रह के लिए मन्दिरों में स्तुति की जाती थी और उग्रह हो जाने के बाद बड़ी खुशियाँ मनाई जाती थीं। इन लोगों की सहानुभूति का यह फल हुआ कि जिन जिन द्वीपों में यह आबाद हुए उन सब द्वीपों के आदिम निवासियों से इनका बहुत जल्द मेल-जोल हो गया और इनकी सभ्यता का प्रभाव दूर दूर तक पड़ गया।

हवाई द्वीप-समूह के आदिम निवासी इसी पालीनीसियन या इन्डोनीसियन जाति की सन्तान हैं। सम्भव है कि उनकी

रगों में माउरी या किसी अन्य जाति का भी खून हो परन्तु उनकी सभ्यता पर किसी जाति-विशेष का कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा जो उनको दूसरे द्वीपों में बसे हुए स्वजातियों से अलग कर देता। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो हवाई

हवाई द्वीप-समूह का एक सरदार

द्वीप-समूह महासागर की लहरों में छिपा हुआ और भूखंडों से हज़ारों मील दूर पड़ा था, दूसरे ज्वालामुखी पहाड़ों के कारण उन द्वीपों में बसना बड़ा कठिन बल्कि असम्भव था। जब

कभी किसी जाति के भूले-भटके कुछ लोग इन निर्जन द्वीपों तक पहुँचते भी होंगे तो जल्द वह लोग नई भूमि की तलाश में निकल जाते होंगे। केवल पालीनीसियन जाति के साहसी लोगों ने पहले पहल हवाई द्वीपसमूह में अपनी बस्तियाँ बनाई थीं। किसी अन्य जाति की सभ्यता के कोई चिन्ह द्वीपों में नहीं मिलते। हवाई में आबाद होने वाले पालीनीसियन लोगों की सभ्यता में जो परिवर्तन हुआ और जिस परिवर्तन के कारण यह लोग दूसरे द्वीपों में रहने वाले स्वजातियों से धीरे धीरे पृथक होते गए वह देश और काल के प्रभाव से हुआ था। नहीं मालूम कै हज़ार वर्ष के परिवर्तन से हवाई के लोगों की आदिम सभ्यता का वह रूप बना होगा जो संसार को सोलहवीं शताब्दी में योरोप के नाविकों द्वारा मालूम हुआ। इस काल के व्यतीत होने से रूप इतना बदला हुआ था कि योरोप वालों ने बहुत दिनों तक महासागर के आदिम निवासियों को किसी एक जाति या सभ्यता से प्रभावित तक नहीं समझा। उन्होंने प्रत्येक द्वीप के आदिम निवासियों को अलग अलग जंगली जाति करके माना और उनके स्वभाव को उसी प्रकार देखा जैसे वे जंगली जानवरों को देखते थे। जिन नाविकों ने हवाई के आदिम निवासियों का हाल लिखा उन्होंने अपने देश वालों के मनो-रंजन के लिए ऐसी अनोखी रीति-रिवाजों की ओर ध्यान दिलाया जिनको समझना बहुत कठिन था और जो धार्मिक विचारों की व्याख्या किये बग़ैर वास्तव में असभ्य जान पड़ते

थे। उन्नीसवीं शताब्दी में जिन वैज्ञानिकों ने नाविकों के लिखे हुए वृतान्तों की सामग्री को लेकर मानवशास्त्र की पुस्तकें लिखीं उन्होंने भी उस प्राचीन संस्कृति की ओर ध्यान नहीं दिया जिस से वे बातें पृथक नहीं की जा सकतीं। किसी ने भी उन जातियों के खेल-तमाशे, कला-कौशल, गीत-संगीत, उपाख्यानों, पौराणिक कथाओं इत्यादि को इस दृष्टि से नहीं देखा कि यह सब एक प्राचीन संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के अंग हैं जो जाति और देश से परे मनुष्य-मात्र की प्राकृतिक प्रेरणा को प्रकट करते हैं।

आदिम सभ्यता को समझने के लिए कई विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। पहले तो समझने वाले में मानवजाति की आध्यात्मिक प्रकृति का पूरा विश्वास होना ज़रूरी है। हमें उदार चित्त होकर यह निश्चय कर लेना चाहिए कि मानवजाति अपनी प्राकृतिक प्रेरणा के कारण यथार्थ की खोज करती चली आती है। हमें यह भी मान लेना होगा कि मनुष्य को प्रकृति ने जो शक्तियाँ प्रदान की हैं उनके प्रयोग से वह यथार्थ तक पहुँच सकता है। मनुष्य के आध्यात्मिक विचार, चाहे वह चीनी हों या जापानी, अँग्रेज़ हो या रूसी, एक न एक लक्षण में समानता रखते हैं*। "सारे संसार में जहाँ कहीं भी मनुष्य ने किसी ऐसे लोक का ख़याल किया है जिसमें मरे हुओं की

* *The Mind of Primitive Man* by Boas. page 156 (1922).

आत्माएँ जाती हैं तो वह लोक पश्चिम ही दिशा में रक्खा गया है। पूरब प्रकाश और जीवन का लोक समझा गया है और पश्चिम अंधकार और मृत्यु का।" मानवशास्त्र के अन्वेषक को यह नहीं समझना चाहिए कि सत्य और यथार्थ तक पहुँचने के लिए हिन्दू या मुसलमान, ईसाई या पारसी होना जरूरी है। संसार की सारी आदिम जातियों की सभ्यता के समान हवाई की भी सभ्यता आध्यात्मिक प्रेरणा ही से उत्पन्न हुई थी और वही लोग उसे ठीक समझ भी सकते थे जिन्हें आध्यात्म-विद्या से लगाव होता। योरोप के हथियारबन्द नाविकों को इतना सावकाश कहाँ था कि वह इस ओर ध्यान दे सकते। जिस काम में वह फँसे थे उसे करने के लिए आध्यात्मविद्या की कोई जरूरत न थी। फिर जब मिश्नरियों को लाकर द्वीपों के आदिम निवासियों को "सभ्य" बनाने का काम आरम्भ किया गया तो उन सिद्धान्तों की ओर ध्यान देना और भी असम्भव हो गया जिन पर उन लोगों की सभ्यता निर्भर थी।

हवाई के आदिम निवासियों की सभ्यता कई मानसिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर निर्भर थी। उनके समाज का विशेष लक्षण संविधान था। इन सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों ही के जीवन को एक ऐसे आदर्श के समरूप बनाने का प्रयत्न किया जाता था जिसे सारी जनता प्रमाणित और सर्वोपरि प्रधान मानती थी। इस प्रकार व्यवस्थित होने के कारण यह समाज एकमत हो गया था। परन्तु इस

एकमत समाज में बाहर से कोई जीवन-प्रणाली व्यक्ति पर ज़बरदस्ती मढ़ नहीं दी जाती थी। यह ज़रूर था कि व्यक्ति के हृदय में यश और महत्व की लालसा नहीं उत्पन्न होती थी। समाज के व्यक्ति जो प्रणाली स्वयं अपने लिए निर्मित करते

हवाई द्वीप का एक फ़ौजी सिपाही

थे उसके द्वारा उनका जीवन प्रकृति के संविधान से निकटतर होता जाता था। उनके एकमत समाज ने व्यक्तित्व की संकीर्ण सीमा लाँघ कर प्राकृतिक संविधान से मैत्री स्थापित करने ही

के हेतु रूढ़ियों को सुरक्षित रक्खा था। इन द्वीपों की परम्परागत सभ्यता में एकता और प्रधान-संस्था के साथ साथ व्यक्ति की स्वतन्त्रता और सत्ता सुरक्षित रहती थी और व्यक्तिगत चेतना की वृद्धि होती जाती थी। आत्मोन्नति की सुविधा थी और सांस्कृतिक प्रतिरूप समय के अनुसार दिन पर दिन विकसित होता जाता था।

पाश्चात्य जातियों ने इस रहस्य को नहीं समझा क्योंकि उनके अनुभव और विचार एक दूसरी ही दुनिया की उत्पत्ति थे। द्वीपों के आदिम निवासियों की स्वतंत्रता को उन्होंने अव्यवस्थित दशा की बरबरता ख़याल किया और जैसे जैसे उनका अधिकार द्वीपों में दृढ़ होता गया वे अपने देश की व्यवस्था द्वीपों में सचारते गए। व्यक्तिप्रधान समाज उनकी दृष्टि में सबसे उत्तम समाज था, जनतातंत्रीय राज्य को वे एकमत समाज की त्रुटियों को दूर करने का एक मात्र उपाय समझते थे। परन्तु उनकी यह बड़ी भूल थी। व्यक्तिप्रधान या जनतातंत्रीय समाज को स्वतंत्र समझना और एकमत समाज को प्रजापीड़क कहना बिल्कुल ठीक न था। यह ज़रूर है कि व्यक्तिप्रधान समाज में बड़ी बड़ी समस्याओं का निर्णय बहुमत से किया जाता है और साधारण समस्याएँ व्यक्तिमत पर छोड़ दी जाती हैं जिस कारण लोगों को यह धोखा होता है कि वे स्वतंत्र हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह भ्रम दूर हो जाय और लोगों को मालूम हो जाय कि प्राकृतशासन की युक्तियों से

जो एक प्रकार की कठोर और स्थिर एकरूपता समाज में आती है वह व्यक्ति की स्वतंत्रता को नाश करके आती है। जो आदर्श जनता के सामने रक्खा जाता है वह किसी एक व्यक्ति या एकमत मंडली का गढ़ा हुआ होता है और उसमें प्राकृतिक संविधान की सी सार्वलौकिकता नहीं हो सकती। शिक्षा-प्रणाली और आर्थिक-विधान द्वारा लोगों के विचारों और सिद्धान्तों को बदल कर कुछ का कुछ कर दिया जाता है। वास्तव में जनतातंत्रीय राज्य में मतभेद की स्वतंत्रता उसी समय होती है जब यह मत आधे से ज्यादा व्यक्तियों का हो। इस प्रकार जो प्रतिरूप उत्पन्न होता है वह राष्ट्रीय तो अवश्य हो सकता है किन्तु सांस्कृतिक कदापि नहीं हो सकता।

जैसे जैसे हवाई के आदिम निवासी योरोप और अमेरिका की सभ्यता से प्रभावित होते गए, जैसे जैसे पाश्चात्य उद्योग-संस्था का जाल उनके देश में फैलता गया, उनकी प्राचीन संस्कृति को हानि पहुँचती गई। ऐंग्लो-अमेरिकन जाति अपनी प्रकृति के कारण उन्हीं लोगों को अच्छा भोजन कराती है; सुन्दर मकानों में रखती है; बिजली, रेल, तार, मोटर इत्यादि की आधुनिक सुविधाएँ प्रदान करती है और शिक्षा देकर किसी प्रकार अपनी आर्थिक दशा सुधारने के क़ाबिल कर देती है जो उसके रंग में रंग जाते और उसकी "सभ्यता" के गुण गाते हैं। जो जातियाँ यह नहीं करतीं, जो उनके जुए के नीचे नम्र भाव से सर नहीं झुकातीं, उनको यह जाति उखाड़-पछाड़

कर फेंक देती है और उन उन स्थानों पर घाव देती है कि वे नाश हुए बिना नहीं रह सकतीं। सौ वर्ष के सम्पर्क से हवाई की आदिम सभ्यता को निर्मूल कर देना इसी जाति का काम था। मिश्नरियों की धार्मिक और भौतिक शिक्षा, फ़ैक्टरियों की मज़दूरी से आमदनी, आर्थिक उन्नति के लोभ, सामाजिक बन्धनों से मुक्त जीवन का आनन्द, इन सारी बातों ने धीरे धीरे जनता पर प्रभाव डाला और पचास ही साठ वर्ष में हवाई के लोग विदेशियों की प्रतिछाया बन गए। पाश्चात्य उद्योग-संस्था का प्रभाव उनके समाज पर पड़ा और परंपरागत वर्णव्यवस्था, कलाकौशल, सहकारिता, संतोष, मौलिक युक्तियों का प्रयोग, यह सब बातें भुलाकर लोग उन बातों की ओर लपकने लगे जिनसे भौतिक कार्य सिद्ध होने की आशा थी। थोड़े ही समय में उनका समाज व्यक्तिप्रधान समाज बन गया और सेवा की जगह स्वार्थ ने लेकर प्राचीन संस्कृति का नाश कर दिया। आर्थिक दशा के परिवर्तन से उस नवविधान की पुष्टि होने लगी जो रुपये पैसे की नीव पर बना था। जैसे जैसे ईसाइयों की संख्या बढ़ती गई, पाश्चात्य उद्योग-संस्था की उन्नति में योग देने वालों की उन्नति होती गई। साथ ही साथ हज़ारों आदमी उन बीमारियों के आक्रमण से मरते-खपते भी गए जो विदेशियों के सम्पर्क से आदिम निवासियों को लग गई थीं। सन् १८३५ के बाद से शताब्दी के अन्त तक जो परिवर्तन हुआ है उसके कारण आज हवाई के आदिम निवासी रंगीन

अमेरिकन होकर उन्हीं ज्वालामुखी पहाड़ों से बनी हुई भूमि पर विचर रहे हैं जिसे उनके पूर्वजों ने अपने रक्त से सींचकर बुझाया था। बारूद, मदिरा, ख़सरा, चेचक, कुष्ट, आदि अपना कार्य कर रहे हैं। राजनैतिक महामारी के बलवान शस्त्र भी चल रहे हैं और मनुष्य को भेड़िया बना रहे हैं। देखना यह है कि कितने काल में हवाई द्वीपों का 'संपूर्ण सुधार' होता है।

एक अद्भुत खोह

उत्तरी अमेरिका में यूनाइटेड स्टेट्स के केन्टकी प्रान्त में लगभग आठ सौ वर्ग मील का एक बड़ा भारी कँकरीला मैदान है जिसके निकट कुछ ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ और जंगल हैं। किसी समय में यह जंगल बहुत घना और दूर तक फैला हुआ था। अब से डेढ़ सौ वर्ष पहले इस विस्तृत भूमि-खंड में आबादी बहुत कम थी और उसके जंगलों में हिंसक पशु रहा करते थे। कहा जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में कोई शिकारी उन जंगलों में शिकार खेलता हुआ उस कँकरीले मैदान के निकट जा निकला था। यहाँ उसने एक रीछ पर गोली चलाई परन्तु रीछ चोट खाकर जंगल के घने हिस्से में भाग गया। शिकारी बड़ा निडर और साहसी था। उसने रीछ का पीछा किया। कुछ दूर तक तो वह रीछ को बराबर देखता रहा किन्तु एक जगह पहुँच कर रीछ उसकी दृष्टि से यकायक ग़ायब हो गया और बहुत ढूँढ़ने पर भी उसका कुछ पता न चला। शिकारी रीछ को ढूँढ़ते ढूँढ़ते एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचा जहाँ जंगली पौदों से छिपा हुआ एक गढ़ा सा था। चारों ओर घूम कर उसने रीछ को बहुत ढूँढ़ा लेकिन जब कहीं भी उसका पता न लगा तो उसे निश्चय हो गया कि रीछ

ज़रूर गढ़े में घुस गया है। ऊपर की झाड़ियों को हटा कर वह गढ़े में घुसा तो उसे ऐसा जान पड़ा कि जैसे गढ़े की दीवार में एक अँधेरी खोह बनी हो। साहस करके शिकारी उस खोह में घुस गया।

बाहर का तंग रास्ता तै करने के बाद शिकारी एक बड़े भारी दालान में जा पहुँचा जिसके दोनों ओर ऊँचे ऊँचे खंभों की दुहरी पंक्तियाँ चली गई थीं और जिसकी छत की मेहराबें बड़े से बड़े महल का मुक़ाबिला करती थीं। इस दृश्य को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसके दिमाग़ से रीछ का ख़याल जाता रहा। उसे विश्वास हो गया कि उसने किसी बड़े भारी महल या ज़मीन के नीचे बने हुए किसी क़िले का पता पाया है। तुरन्त बस्ती में जाकर लोगों को ख़बर की और मशालें और कई साथियों को अपने साथ लेकर फिर खोह में वापस आया। मशालों की रौशनी में यह लोग दूर तक चले गए। खोह के भीतर की भूमि और दीवार और खंभे देख कर उन्होंने इतमीनान कर लिया कि वह किसी राजा का महल या क़िला न था बल्कि वास्तव में वह प्रकृति का एक अद्भुत खेल था।

जिस आदमी की ज़मीन में यह खोह थी उसने सन् १८०६ ईस्वी में उस ज़मीन को एक व्यापारी के हाथ बेंच डाला। चूंकि ज़मीन ज्यादा क़ीमती न थी इसलिए व्यापारी ने केवल इतना मालूम करके कि खोह में शोरा बहुत है और कुछ विशेष

जाँच-पड़ताल न की और उसे योंही पड़ा रहने दिया। कुछ साल के बाद जब यूनाइटेड स्टेट्स और इंगलैंड के बीच युद्ध छिड़ा तो उस वक्त बारूद की ज़रूरत पड़ी। जब बारूद बनाने के लिए शोरे की बहुत मांग हुई तो व्यापारी का ध्यान इस खोह की तरफ़ गया और उसने खोह में बारूद बनाने की एक फ़ैक्टरी क़ायम कर दी। वह फ़ैक्टरी खोह के मुँह से क़रीब एक मील की दूरी पर बनाई गई थी और उसमें काम करने वाले मज़दूर शोरे की तलाश में अन्दर ही अन्दर मील डेढ़ मील तक चले गए थे। लगभग एक साल काम करने के बाद फ़ैक्टरी बन्द कर दी गई। मज़दूरों के द्वारा लोगों को यह तो ज़रूर मालूम हो गया कि खोह बहुत बड़ी और अद्‌भुत है लेकिन यह कोई न बता सकता था कि वह कितनी बड़ी है। जब लड़ाई ख़त्म हो गई तो लोगों को इस खोह का भेद जानने की चाह हुई। लोग टोलियाँ बना बना कर खोह में जाने लगे और क़रीब ढाई मील तक जा कर एक बड़े अथाह खड्ड के किनारे से लौट आने लगे जिसे पार करने का कोई सहारा न था। जो लोग खड्ड तक जाते थे उन्हें खड्ड के उस पार बड़े बड़े दालान और खंभों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती थीं और एक ओर से पानी बहने की गंभीर आवाज़ सुनाई देती थी। इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर और आवाज़ों को सुन कर लोगों के हृदय में इस खड्ड को पार करने की उत्कंठा बढ़ती जाती थी। १८१७ ईस्वी में इस अथाह खड्ड के ऊपर लकड़ी

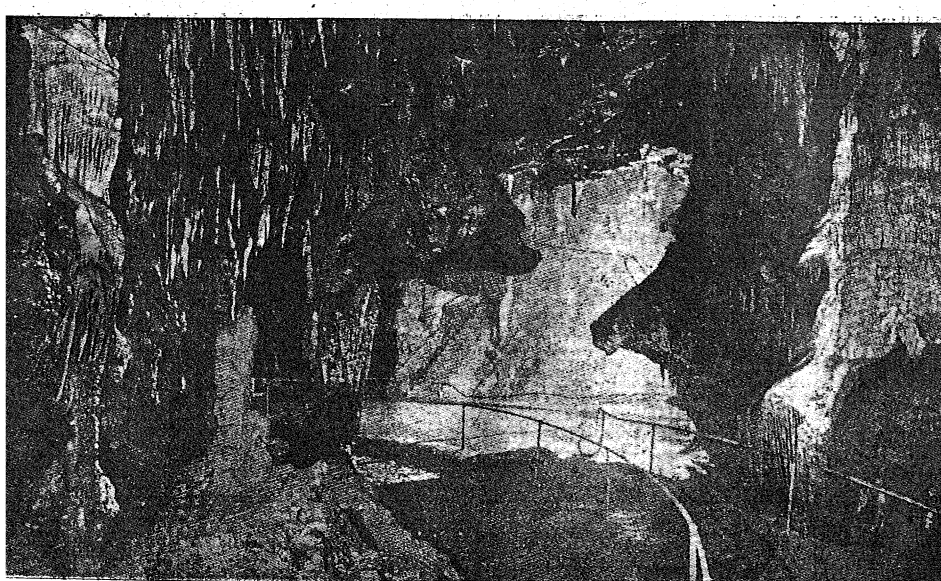

केन्टुकी की खोह में अथाह खड्ड के ऊपर लकड़ी का पुल

का पुल बनाया गया और लोग उसके दूसरे किनारे पर जा पहुँचे।

पुल बन जाने के बाद से लोगों में साहस और उत्साह की वृद्धि हुई और खोह का विस्तार जानने के लिए बहुत से लोग खाने-पीने का ज़रूरी सामान साथ लेकर जाने लगे। थोड़े ही दिनों में लगभग दो सौ मील लम्बी भूल-भुलैयों और दूसरे संकीर्ण पथों की चप्पा चप्पा ज़मीन छान डाली गई और खोह के मुँह से क़रीब छः मील के फ़ासले तक लोग पहुँच गए। इसी खोज में कई वर्ष बीत गए और सैकड़ों झरने और जल-प्रपात, ऊँचे ऊँचे दालान और बड़े बड़े खम्भे और मेहराबें और नहीं मालूम कितनी छोटी-बड़ी नदियाँ और झीलें देखी गईं। ऐसी सुरंगों की तो कोई गिनती नहीं हो सकती जो भूल-भुलैयों की तरह दालानों और खंभों के चारों ओर चक्कर लगाती हैं। कुछ सुरंगों के भीतर से पानी बहने की सी आवाज़ें आती हैं, कुछ बिल्कुल सुनसान पड़ी है। कुछ सुरंगें ऐसी भी हैं जिनके भीतर से खूख्वार शेर के दहाड़ने की सी आवाज़ आती है। जिन मेहराबों के ऊपर यह सुरंगें हैं उनके नीचे क़रीब डेढ़ मील लम्बी और दो सौ फ़ीट चौड़ी नदी बहती है जिसके किनारे अगर बन्दूक या तमंचा छोड़ा जाय तो उसकी प्रतिध्वनि मेहराबों में कई मिनट तक गूंजती रहती है। इसी नदी के किनारे एक ऐसी मेहराबों की बनी छत है जिसके नीचे खड़े होकर लोगों को बहुत दिन तक यह मालूम हुआ करता था कि

जैसे आसमान में तारे चमक रहे हों। कुछ लोगों ने कभी कभी उस तारों भरे आसमान पर बादल छा जाते हुए भी देखे थे। कई वर्ष तक उस खुली हुई जगह की खोज होती रही जिस में से लोगों को आसमान और तारे दिखाई देते थे। खोह के ऊपर का जंगल अच्छी तरह देख डाला गया परन्तु कोई गढ़ा या दरार तक न मिली। अब यह मालूम हो गया है कि खोह के अन्दर से दिखाई देने वाला आसमान वास्तव में एक बड़े दालान की ऊँची छत है जिसकी मिट्टी में एक विशेष धातु के छोटे छोटे टुकड़े मौजूद हैं। जब इस दालान के किसी हिस्से में लोग जाते हैं तो उनकी मशालों या लालटेनों की रोशनी इन धातु के टुकड़ों पर पड़ती है जिससे वह तारों की तरह चमकने लगते हैं; मेहराबों की मिट्टी पर रोशनी का कुछ असर न होने के कारण वह नीले आसमान की सी दिखाई पड़ती है। यदि साथ ही साथ पड़ोस के किसी दूसरे दालान में भी रोशनी की जाती है तो उन चमकते हुए धातु के टुकड़ों पर एक विशेष मेहराब की छाया पड़ती है जिसे देखने वाले बादल समझते हैं। खोह के भीतर का यह छः मील लम्बा रास्ता प्रकृति के अद्भुत दृश्यों से भरा पड़ा है और अभी तक खोह के दूसरे किनारे का पता नहीं चलता।

इस अद्भुत खोह में प्राचीन काल की जंगली जातियों के मनुष्यों की हड्डियाँ और उनके व्यवहार के मिट्टी के बरतन पाए गए हैं। कहीं कहीं जंगली जानवरों की हड्डियाँ भी मिली

हैं। सूर्य की किरणें न पहुँचने के कारण खोह में किसी प्रकार के वनस्पति नहीं उगते परन्तु मछलियाँ, मक्खियाँ, मकड़ियाँ, झींगुर और सैकड़ों क़िस्म के कीड़े-मकोड़े जो किसी समय में बाहरी दुनिया से यहाँ आ गए थे पाए जाते हैं। अँधेरे में लगातार रहने के कारण उन सब की बनावट में फ़र्क़ आ गया है। सबसे बड़ा फ़र्क़ तो यह है कि वह सब के सब बिल्कुल अंधे हैं। उनकी आँखें मौजूद हैं परन्तु उनमें देखने की शक्ति जाती रही है। घोर अंधकार के कारण उनके लिए आंखें होना या न होना बराबर था इसलिए बाद की नस्लों में आहिस्ता आहिस्ता देखने की शक्ति कम होने लगी यहाँ तक कि एक दिन उसका लोप हो गया और जो नस्लें अब खोह में पाई जाती हैं वह सब की सब अंधी हो गईं। प्रकृति का यह नियम है कि जब कभी किसी कारण से कोई अंग बेकार हो जाता है तो वह दूसरे अंगों को ख़ास तरह पर मज़बूत कर देती है। इसलिए खोह की मछलियों में सुनने की शक्ति तेज़ हो गई है और कीड़े-मकोड़े की वह मूछें जिनसे वे आगे-पीछे का हाल मालूम करते हैं ज्यादा लम्बी हो गई है। खोह के बाहरी हिस्सों में लाखों चमगादड़ सर्दी से बचने के लिए आश्रय लेते हैं और कभी कभी जंगली जानवर भी घुस कर बैठे रहते हैं।

खोह में जो बड़ी नदी बहती हैं उसमें कभी कभी सोतों द्वारा ऊपर से पानी आ जाया करता है। इसकी वजह से नदी पर एक गहरा कुहरा छा जाता है और तेज़ से तेज़ रोशनी

को बेकार कर देता है। जो लोग इस नदी पर नाव में सवार होकर जाते हैं वह घन्टों कुहरे की वजह से भटकते रहते हैं। इस अद्भुत खोह की जलवायु का भी हाल कुछ निराला है। है। बारहो महीने पचपन दर्जे की गर्मी बनी रहती है। हवा न गर्मी के मौसम में गर्म होती है न सर्दी में ठंडी। बाहरी दुनिया में चाहे गर्मी हो या सर्दी, खोह के अन्दर एक सी आब-हवा रहती है और इस कारण एक अजीब बात यह पैदा होती है कि जब गर्मी के मौसम में बाहर की हवा गर्म होती है तो खोह से ठंडी हवा बाहर निकलती है। सर्दी के मौसम में जब बाहर की हवा ज्यादा ठंडी होती है तो खोह के भीतर हवा तेज़ी से घुसती है। बल्कि अगर यह कहा जाय कि खोह साल में एक मरतबा सांस लेती है तो शायद अनुचित न होगा। जो लोग कुछ दिनों तक खोह में रहे हैं उनका कहना है कि उसकी हवा अत्यन्त स्वच्छ और शुष्क है जिसका प्रभाव स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा होता है। इसी विचार से कभी कभी क्षय के रोगी इस खोह में जाकर रहते हैं और उनको फ़ायदा भी होता है।

खोह के उत्तरी भाग में एक बहुत बड़ा जल-प्रपात है जो किसी तरह नियागरा के जल-प्रपात से कम नहीं। उसका पानी लगभग डेढ़ सौ फ़ीट की ऊँचाई से गिरता है और कई नहरों में बहता हुआ बड़ी नदी में जा मिलता है। इसी जल-प्रपात के समीप वह बड़ी सुरंग है जिसमें से अद्भुत आवाज़ें आया करती हैं।

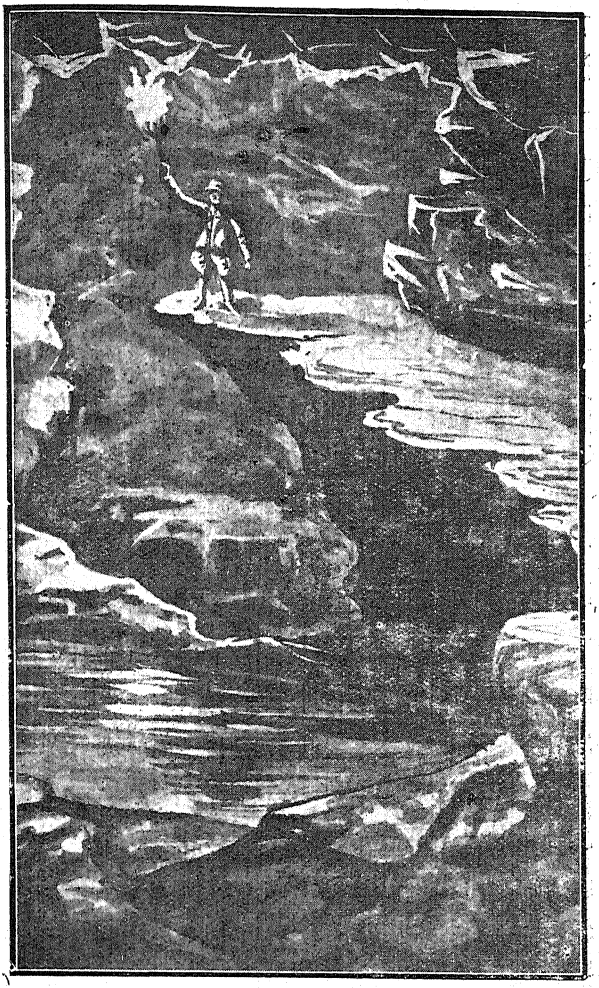

केन्टुकी की खोह का एक दूसरा दृश्य

इस सुरंग से आगे जाने का कोई रास्ता नहीं है। कुछ दिनों से लोगों में यह ख़याल पैदा हो गया था कि यह सुरंग खोह की तीसरी मंज़िल का दरवाज़ा है। कई बार बड़े बड़े साहसी लोगों ने इस सुरंग में उतरने का इरादा किया मगर भयानक आवाज़ों के कारण ऐन वक्त पर उनकी हिम्मतें टूट गईं और उन्होंने सुरंग के नीचे उतरने का साहस छोड़ दिया। लोगों को सैकड़ों तरह के लालच दिलाये गये, हज़ारों रुपयों के इनाम के इश्तहार दिये गये मगर उस पर भी खोह में उतरने को कोई राज़ी न हुआ। एक दफ़ा बड़ी हिम्मत करके एक वैज्ञानिक ने सुरंग में उतरने का इरादा ज़ाहिर किया। उनके लिए बड़े बड़े इन्तज़ाम किए गए। रस्सी बल्ली, तख्ते जमा किये गए और उनके सहारे वह सुरंग में लटकाए गए। अभी सौ फ़ीट से ज़्यादा नीचे न पहुँचे होंगे कि आपने चीख़ना और चिल्लाना शुरू कर दिया। लाचार होकर लोगों ने उन्हें ऊपर वापस घसीट लिया। हफ़्तों तक हज़रत का बुरा हाल रहा और फिर उन्होंने खोह का कभी नाम भी न लिया।

इन वैज्ञानिक महाशय के इतना घबरा जाने से उन सब लोगों के भी हौसले पस्त हो गये जो सुरंग में उतरने को राज़ी थे और फिर बहुत दिनों तक किसी ने उसमें उतरने का चर्चा भी न किया। जो लोग खोह में घूमते घूमते छः मील का सफ़र तै करके कभी इस सुरंग के मुँह तक जा पहुँचते तो उनको रास्ता दिखाने वाले उन से यह क़िस्सा कह दिया करते और

वह वहाँ से वापस लौट आया करते लेकिन उनके हृदय में सुरंग को देखने की उत्कंठा बनी रहती।

आख़िरकार वह काम जिसे बड़े मज़बूत और साहसी आदमी न कर सके थे एक लड़के ने कर दिखाया। उस लड़के की हिम्मत और बहादुरी और सूझ-बूझ की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। सुरंग के भीतर जाकर उस लड़के को जो कुछ अनुभव हुआ और जिस तरह उसने अपने काम को समाप्त किया वह अन्वेषण के इतिहास में रोमाञ्च-कारी घटना है। उस लड़के का नाम विलियम कोर्टलैंड प्रेन्टिस था और वह एक अख़बार के संपादक का एकलौता बेटा था। यह लड़का अक्सर इस अद्भुत खोह की सैर किया करता था और खोह के संबंध में उसकी जानकारी ऐसे पथ-प्रदर्शकों से कहीं ज्यादा थी जो इसी काम की रोटी खाते थे। इस लड़के ने कई ऐसी सुरंगों का पता लगाया था जहाँ तक किसी आदमी की पहुँच भी न हुई थी। उसको किसी प्रकार का भय छू तक न गया था और जितनी ज्यादा कठिनाई उसके सामने होती थी उतनी ही उसकी हिम्मत बढ़ती जाती थी। जब इस लड़के को यह मालूम हुआ कि बड़े बड़े साहसी इस सुरंग में उतरने से घबराते हैं तो उसकी हिम्मत और भी बढ़ गई और उसने अपने साथियों से सुरंग में उतरने का इरादा ज़ाहिर किया। बहुत से लोगों ने उसको समझाया कि वह ऐसा काम न करे और सुरंग में उतरने का इरादा छोड़

दें परन्तु लड़के ने किसी की भी बात न सुनी और अपने इरादे पर मज़बूती से क़ायम रहा। आख़िर एक दिन नियत किया गया और लड़के के सुरंग में उतरने के लिए सारा आवश्यक सामान इकट्ठा किया गया। सुरँग के मुँह पर मोटे मोटे लट्ठे जमा दिये गये। जिनके ऊपर से एक मोटा लम्बा रस्सा एक बड़ा पत्थर बांध कर इसलिए लटकाया गया कि जिसमें रास्ता साफ़ हो जाय और कोई रोड़े-पत्थर लड़के के ऊपर न गिरें। पाँच-छः मज़बूत आदमी लड़के को सुरंग में उतारने और ऊपर घसीटने के काम पर रखे गये और बहुत से लोग उनकी सहायता और दूसरे कामों के लिए सुरंग के मुँह पर तैयार खड़े रहे।

निश्चित समय पर विलियम प्रेन्टिस दोनों हाथों में दो लालटेन लेकर और सर पर हिफ़ाजत के लिए कई एक टोपियाँ पहन कर पहुँचा। उसकी कमर में रस्सा बांधा गया और उसे सुरंग में लटका दिया गया। जो लोग सुरंग के मुँह पर खड़े थे उनके चेहरे इस तरह उदास थे कि जैसे लड़का ज़मीन के दहकते हुए सीने में जल-भुन कर ख़ाक होने जा रहा है। जैसे जैसे लड़का नीचे जाने लगा तमाम लोग सुरंग के मुँह पर कान लगा कर उसमें से आने वाली आवाज़ों को ध्यान से सुनने लगे।

सुरंग में ऐसा घोर अँधकार छाया था कि प्रेन्टिस की तेज़ लालटेनें भी कुछ काम न देती थीं। पहले तो कुछ रदू तक

उसे ऐसा जान पड़ा जैसे वह किसी अंधे कुएँ में उतर रहा हो। सुरंग में थोड़ी ही दूर उतरने के बाद उसे एक बहुत तंग रास्ते से होकर जाना पड़ा लेकिन जैसे जैसे वह नीचे उतरता गया सुरंग ज्यादा चौड़ी होती गई। कई जगहों पर कंकर-पत्थर भी लड़के के सर पर गिरे मगर कई टोपियाँ पहने होने के कारण उसे चोट नहीं आई। लगभग सौ फ़ीट नीचे जाने के बाद उसे एक झरने की फुहार में होकर गुज़रना पड़ा। यदि वह उस समय बड़ी होशियारी से काम न लेता तो लालटेने ज़रूर बुझ जातीं। कुछ दूर और जाने के बाद सुरंग की दीवारों में मधुमक्खी के छत्ते की तरह के बहुत से छेद दिखाई दिये जिनमें से अत्यन्त सुरीली आवाज़ें निकल रही थीं। इस जगह से दस-बारह फ़ीट नीचे जाकर दीवार में उसे एक दूसरी सुरंग का बड़ा सा मुँह दिखाई पड़ा और यहीं से सुरंग चौड़ी होना शुरू हुई। नीचे पहुँचते पहुँचते उसका आकार बड़े भारी गुम्मद की तरह का हो गया। कुछ दूर और चल कर जब लड़के के पाँव ज़मीन में टिके तो वह अपने सामने का दृश्य देख कर चकित रह गया। जिस स्थान पर वह खड़ा था उससे निकट ही साफ़ पानी की बहुत सी मोटी मोटी धारें निकल रही थीं जो कहीं नीचे जाकर गिरती थीं। उसके सर से कुछ दूर ऊपर एक झरना गिर रहा था जिसका पानी उछलता-कूदता एक बड़े मोटे खंभे का चक्कर लगाता चला जा रहा था। जहाँ वह खड़ा था उस जगह की मिट्टी कुछ नीली-सी मालूम होती

थी जिस पर जहाँ तहाँ लाल रंग की छीटें सी पड़ी हुई थीं। देखने से यह साफ़ जान पड़ता था कि उस जगह पर पहले ज़रूर पानी बहता रहा होगा। लड़के ने कुछ दूर घूम फिर कर यह भी मालूम किया कि इस जगह से बहुत से रास्ते घूमते और चक्कर खाते नीचे की तरफ़ जा रहे हैं। सामने की दीवारों की हालत देख कर यह जान पड़ता था कि जैसे अभी अभी उन पर से पानी बह कर निकल गया है।

प्रेन्टिस जब नीचे की खोह की सैर कर चुका तो उसने रस्सा बड़ी ज़ोर से हिलाया और लोगों ने उसे ऊपर खींचना शुरू कर दिया। जब वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उसे गुफा की तरह का दरवाज़ा मिला था तो झूले की तरह पेंग लेकर उस दरवाज़े में जा पहुँचा। कमर से रस्सा खोल कर हाथ में थाम लिया और लालटेन सँभालने लगा। इतने में हाथ से रस्सा छूट गया और सुरंग के दरवाज़े से दूर पहुँच कर झूलने लगी। इस गुफा में ऐसी ज़ोर की आवाज़ें गूंज रही थी कि लड़के का किसी को पुकारना बिल्कुल व्यर्थ था। पहले तो उसकी आवाज़ का सुरंग के ऊपर तक पहुँचना कठिन था और अगर कोई आवाज़ सुन भी लेता तो किसी तरह उसको सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती थी। इस जगह पर सुरंग ऊपर की अपेक्षा चौड़ी होने के कारण ऊपर के लोग हज़ार प्रयत्न करते तो भी किसी तरह रस्से को लड़के के पास तक नहीं पहुँचा सकते थे। यह सब बातें सोच कर लड़के ने अपनी मदद अपने आप करने

के सिवा कोई चारा न देखा। इस गुफा का मुँह सुरंग की ओर इतना ढालू था कि उस पर खड़े हो कर बाहर की तरफ़ झुकना बड़ा ख़तरनाक था। फिर रस्सा इतनी दूर चला गया था कि झुक कर उस तक पहुँच सकना बिल्कुल असंभव था। लड़के की नज़र के सामने यह सब ख़तरे की बातें थीं इस पर भी उसके मन में किसी तरह की घबराहट पैदा नहीं हुई। उसे अपने उद्योग और सूझ-बूझ पर पूरा भरोसा था। दो-चार मिनट इधर उधर देख कर उसने अपनी लालटेनों में से वह तार निकाल लिये जो चिमनी को रोकने और लालटेन को हाथ में पकड़ने के लिए लगे होते हैं और उन्हें सीधा करके एक दूसरे में जोड़ा और एक सिरे पर तार को मोड़ कर आंकड़ा बना लिया। फिर एक हाथ में लालटेन उठा कर और दूसरे हाथ में तार लेकर वह गुफा के दरवाज़े पर खड़ा होकर इस तरह बाहर झुका कि यदि आंकड़े में रस्सा फँस न जाता तो वह ज़रूर सुरंग के नीचे जा गिरता। यदि लड़के को ज़रा भी घबराहट होती या वह ज़रा भी हिम्मत हार जाता या गुफ़ा के दरवाज़े से बाहर झुकने में अपना भार न सँभाल सकता तो रस्से का फँसा लेना असंभव था।

जब रस्सा हाथ में आ गया तो प्रेन्टिस ने उसका फंदा होशियारी से एक उभरे हुए पत्थर में फँसा दिया और बिना किसी तरह की घबराहट या परेशनी के वह गुफ़ा देखने को भीतर घुसा। थोड़ी दूर अंदर चल कर उसका रास्ता एक बड़े

झरने ने रोक दिया जिसका पानी लगभग पचास फ़ुट की ऊँचाई से गिर कर छोटी छोटी दरारों में हो कर नीचे जा रहा था। इन दरारों के पास बैठ कर उसने वह अद्भुत सुरीली आवाज़ें सुनी जो उनमें से निकल रही थीं। उसे यह आवाज़ें सुनकर विश्वास हो गया कि पानी ज़रूर किसी धातु पर गिर रहा है परन्तु अपने पास इसकी जांच करने का कोई सामान न होने के कारण वह बेबस हो गया। फिर किसी और दिन गुफ़ा में आने का इरादा करके उसने रस्सा कमर से बाँध लिया और उसे हिलाकर अपने दोस्तों को ऊपर खींचने का इशारा किया। रस्सा कुछ दूर ऊपर खिँच कर रुक गया। जिस लट्ठे पर से वह लटकाया गया था उसमें एक गाँठ फँस गई जिसके कारण खींचना मुश्किल हो गया। बड़े प्रयत्न से किसी प्रकार लट्ठा घुमाया गया तो वह गांठ ऊपर आई और लोगों ने लड़के को घसीटना शुरू किया। परन्तु अब एक नई कठिनाई सामने आई। लट्ठे का खुरदरापन रस्से को जगह से हटने न देता था और खींचने वाले मज़बूत आदमी बेदम हुए जा रहे थे। वे अपना सारा ज़ोर भी लगाना नहीं चाहते थे कि कहीं रस्सा टूट न जाय और खींचना भी ज़रूरी था। इसी असमंजस में लोग धीरे धीरे लड़के को ऊपर खींच रहे थे कि यकायक रगड़ खा कर रस्सा जलने लगा और बात की बात में उसमें से लपटें उठने लगीं। यह देखना था कि लोग चीख़ उठे और उन्हें निश्चय हो गया कि अब लड़के का बचना असंभव है।

जब प्रेन्टिस के कान में लोगों के चीख़ने की आवाज़ पहुँची तो उसने सर उठा कर ऊपर की तरफ़ देखा और रस्से में से लपटें निकलती हुई देख कर उसे भी ऐसा मालूम हुआ कि अब उसका बचना असंभव है। सुरंग के मुँह से लगभग ६० फ़ीट नीचे वह लटक रहा था और वह रस्सा, जो उसके जीवन का आधार था, जल रहा था। जान बचने की कोई संभावना न थी। उसका दिमाग़ बड़ी तेज़ी से कोई ऐसी तरकीब सोचने में लग गया जिससे जान बचे। इतने ही में उसके सर पर पानी की बूँदें गिरने लगीं और थोड़ी देर में रस्सा धीरे धीरे ऊपर घसिटने लगा। सुरंग के मुँह पर पहुँच कर उसे मालूम हुआ कि उसके सौभाग्य से उसके एक दोस्त के पास बोतल में कुछ पानी था जिसे छिड़क कर बहुत मुश्किल से आग बुझाई गई थी।

रस्सा खींचने वालों में से दो आदमी मूर्छित होकर गिर गए और बाकी जितने लोग थे उनका बुरा हाल था। अगर कोई हमेशा की तरह शान्त और प्रसन्न था तो वह केवल यही साहसी लड़का था। लोगों का यह हाल देखकर वह उनकी देख-भाल में लग गया; किसी को पानी पिलाया किसी को पंखा झला और जब सब का चित्त शान्त हुआ तो उन्हें सुरंग के नीचे का हाल वह बड़ी दिलचस्पी से सुनाने लगा। जो हाल प्रेन्टिस ने उन्हें बताया उससे उन्हें यह पता चला कि वास्तव में उस सुरंग के नीचे खोह की तीसरी मंज़िल है जिसमें चारों

तरफ़ से पानी के सैकड़ों धारे और झरने बह कर पहुँचते हैं। प्रेन्टिस के सुरंग में उतरने से रास्ता अब साफ़ हो गया और लोग उसमें साहस करके उतरने लगे। सैकड़ों आदमी सुरंग में उतर चुके हैं और उनके द्वारा अब तक जो कुछ मालूम हुआ है उससे यह अनुमान किया जाता है कि शायद खोह की कोई चौथी मंज़िल भी होगी जिसकी ओर तीसरी मंज़िल के सब झरने जा रहे हैं। अभी तक कोई ऐसी सुरंग नहीं मिली है जिसके द्वारा इस अद्भुत खोह की चौथी मंज़िल तक पहुँचा जा सके। जिस समय वह सुरंग मिल जायगी तो दूसरे विलयम प्रेन्टिस की भी तलाश होगी। अभी तो इस बड़ी और अथाह सुरंग के ऊपर विलयम प्रेन्टिस का नाम सोने के अक्षरों में लिखा हुआ चमक रहा है।

— —